फोकस इण्डिया
प्रकाशन
जुलाई, 2017

पारिस्थितिकीय खेती में महिलाओं की बराबरी और बढ़ती भूमिका

सहयोग
रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफटुंग,
दक्षिण एशिया

पारिस्थितिकीय खेती में महिलाओं की बराबरी और बढ़ती भूमिका

FOCUS ON THE GLOBAL SOUTH

पारिस्थितिकीय खेती में महिलाओं की बराबरी और बढ़ती भूमिका

लेखक : **अश्लेषा खड़से**

प्रकाशन : **जुलाई, 2017**

द्वारा प्रकाशित और इस पुस्तिका की प्रतियां पाने के लिए संपर्क : **फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ**
33–डी, तीसरी मंजिल, विजय मंडल एनक्लेव
डी.डी.ए. एस.एफ.एस. फ्लैट्स, कालू सराय, हौज खास
नई दिल्ली–110016
टेलीफोन : 91–11–26563588 , 41049021
http://focusweb.org/

सहयोग : **रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफटुंग, साउथ एशिया**
सेंटर फोर इंटरनेशनल कॉ–ऑपरेशन
सी–15, दूसरी मंजिल, सफदरजंग डेवलपमेंट एरिया मार्केट,
नई दिल्ली–110016
www.rosalux-southasia.org

"Sponsored by the Rosa Luxemburg Foundation e.V. with funds of the Federal Ministry for Economic Cooperation and Development of the Federal Republic of Germany."
"Gefördert durch die Rosa-Luxemburg-Stiftung e.V. aus Mitteln des Bundesministerium für wirtschaftliche Zusammenarbeit und Entwicklung der Bundesrepublik Deutschland"

फोटो साभार : रुचा चिटनिस, दिव्या जैन

डिजाइन एवं मुद्रण : **इंडिगो**, 9313852068

इस पुस्तिका की विषयवस्तु का इस शर्त के साथ बिना–रोक टोक के पुनर्मुद्रण और उद्धृत किया जा सकता है कि इस स्रोत का उल्लेख किया जाए। फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ उस प्रकाशित सामग्री को पाने पर आभारी रहेगा, जिसमें इस रिपोर्ट का उल्लेख किया गया है।

यह एक अभियान प्रकाशन है और निजी वितररण के लिए है!

विषय सूची

प्रस्तावना 5

जेंडर से संबंधित कुछ सामान्य अवधारणाएं 7

(1) जेंडर क्या है ? 7

(2) जेंडर और शक्ति 10

(3) पितृसत्ता क्या है ? 11

(4) जेंडर भूमिका क्या है ? 14

(5) कृषि में जेंडर भूमिकाएं 15

कैसे पूंजीवादी हस्तक्षेप/पारंपरिक खेती ने जेंडर संबंधों को बदल दिया है और महिलाओं को बेदखल किया है 16

कृषि में महिलाएं 17

(1) कृषि में भारतीय महिलाओं की स्थिति 17

(2) ग्रामीण महिलाओं के अधिकार व हकदारी 21

पारिस्थितिकीय कृषि : अनुकूलता बनाम परिवर्तन 23

क्या पारिस्थितिकीय खेती जेंडर समानता ला सकता है ? 25

जेंडर उपयुक्त जगहों का निर्माण 26

हम खुद से बदलाव की शुरुआत कर सकते हैं : समालोचनात्मक शिक्षा 27

पारिस्थितिकीय कृषि का परिवार के स्तर पर प्रभाव 29

पारिस्थितिकीय कृषि/जैविक खेती कैसे महिलाओं के लिए बेहतर अवसर प्रदान करते हैं 30

कुछ सफल अनुभव (केस स्टडी) 32

(1) तमिलनाडु महिला समूह (Tamil Nadu Women's Collective) 32

(2) ग्रामीण महिला उत्थान समाज (Rural Women Upliftment Society), मणिपुर 34

(3) डेक्कन डेवलपमेंट सोसाइटी (Deccan Development Society) 35

(4) भूमिहीन महिला किसानों के साथ कुडुम्बश्री का काम 37

प्रस्तावना

इस पुस्तिका का उद्देश्य जमीनी संगठनों को कुछ मूलभूत जानकारियों से अवगत कराना है जिससे वे जेंडर और पारिस्थितिकीय कृषि के बीच के संबंध को पहचान सकें और जेंडर असमानता को दूर करने के लिए पारिस्थितिकीय कृषि की क्षमताओं को समझ सकें।

पारिस्थितिकीय कृषि दुनिया भर में बड़ी तेजी से बढ़ता हुआ एक सामाजिक आंदोलन है। इस वक्त हमारा ग्रह – पृथ्वी और मनुष्यता कई संकटों से घिरा हुआ है – जैसे भुखमरी, जलवायु परिवर्तन, पानी का अभाव, दूषित पर्यावरण, और बेरोजगारी इत्यादि। पारिस्थितिकीय कृषि में इन समस्याओं से निपटने की असीमित क्षमताएं हैं। यह ऐसा जमीनी स्तर का उपाय है, जिसे विश्व भर के अधिकांश संसाधनहीन ग्रामीण समुदाय बड़ी आसानी से अपना सकते हैं। इस पुस्तिका के माध्यम से हम यह जानने की कोशिश करेंगे कि :

- क्या पारिस्थितिकीय कृषि से महिलाओं और पुरुष दोनों को बराबरी से लाभ पहुंचेगा ?
- क्या इसमें समाज में व्याप्त जेंडर आधारित गैरबराबरी से निपटने की क्षमता मौजूद है ?
- क्या इसकी मदद से महिलाएं निर्णय लेने और नेतृत्व प्रदान करने की स्थिति तक पहुंच सकती हैं ? अगर हां, तो कैसे ?
- इस प्रकार के पारिस्थितिकीय कृषि का स्वरूप क्या होगा ?

शुरुआत में हम कुछ मौलिक अवधारणाओं के बारे में जानेंगे – जैसे जेंडर, पितृसत्ता, जेंडर भूमिका, और इन सबका कृषि के साथ क्या संबंध है। इसके बाद हम देखेंगे कि कृषि में पूंजीवादी विकास ने किस प्रकार से महिलाओं को हाशिए पर डाल दिया है और जेंडर असमानता को बढ़ावा दिया है। इसके साथ–साथ हम कृषि के अंदर महिलाओं की मौजूदा स्थिति को जानेंगे, जिसमें भारत के संविधान द्वारा प्राप्त अधिकार और हकदारी भी शामिल है। बाद में हम पारिस्थितिकीय कृषि की परिभाषा को समझते हुए यह देखेंगे कि किन स्थितियों में यह जेंडर समानता को बढ़ाता है और कब ये बेअसर हो जाता है। हम परिवार के स्तर पर इसके प्रभाव और फायदों में देखेंगे कि यह कैसे समुदाय के स्तर पर महिलाओं के लिए बेहतर अवसर प्रदान करता है।

अंत में हम भारत के कुछ सफल उदाहरणों का जिक्र करेंगे जहां पारिस्थितिकीय कृषि ने जेंडर समानता में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। तमिलनाडु महिला समूह, कुडुम्बश्री और डेक्कन डेवलपमेंट सोसाइटी कुछ ऐसे नायाब उदाहरण हैं। इन समूहों और संगठनों ने शोषित महिलाएं (विशेष रूप से वो जो किसी विशिष्ट जाति या भूमिहीन समुदाय से हैं) को पारस्थितिकी कृशि के जरिए समाज में एक नया स्थान प्रदान किया है। सामूहिक रूप से खेती करते हुए इन महिलाओं के पास अब जमीन है, वे पारिस्थितिकीय कृषि सीख रही हैं, और धीरे–धीरे खाद्य स्वायत्त, आत्मनिर्भर, और मजबूत नेता और किसान के रूप में उभर रही हैं। इन अनुभवों ने परिवार के अंदर महिलाओं की स्थिति को सुधारा है।

इसी प्रकार मणिपुर की ग्रामीण महिला उत्थान समिति के अनुभव से हम देखते हैं कि जो क्षेत्र लगातार हिंसा से प्रभावित है वहां भी पारिस्थितिकीय कृषि की मदद से महिलाओं के लिए आजीविका, आमदनी और एकजुटता के अवसर तैयार किये जा सकते हैं। इन प्रयासों से महिलाओं को राजनीतिक रूप से हस्तक्षेप करने का आत्मविश्वास बढ़ा है और अन्यायपूर्ण नियमों का प्रतिरोध करने की क्षमता विकसित हुई है।

महिला किसान (फोटो : रुचा चिटनिस)

जेंडर से संबंधित कुछ सामान्य अवधारणाएं

''स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि बनाई जाती है'' — सीमोन द बोआ[1]

(1) जेंडर क्या है ?

अक्सर लोगों के बीच यह गलत धारणा होती है कि जेंडर का अर्थ स्त्री होता है, या फिर जेंडर के मुद्दों को महिलाओं के मुद्दों के रूप में माना जाता है। यह सच है कि कई जेंडर कार्यक्रमों के केंद्र में विशेषरूप से महिलाएं होती हैं। लेकिन ऐसा इसलिए है क्योंकि समाज के अंदर इनकी स्थिति काफी कमजोर होती है। उन्हें गैरबराबरी और व्यवस्थागत भेदभाव से ज्यादा जूझना पड़ता है। जाहिर सी बात है, सारी महिलाएं एक समान नहीं होती। क्योंकि भारतीय कृषक समाज में वर्ग, जाति, और धर्म के आधार पर लोगों की हैसियत तय होती है।

सभी का एक जेंडर होता है — चाहे वह पुरूष हो या महिला हो या अन्य हो। जेंडर की अवधारणा 'सेक्स' या लिंग से भिन्न है जो एक शारिरिक बनावट मात्र है। किसी का जन्म पुरुष या स्त्री यौन लक्षणों के साथ हो

[1] *Simone de Beauvour 1993*

सकता है, परंतु किसी का जेंडर एक सामाजिक संरचना है। जन्म के समय से हमें पुरुष या स्त्री में बांट दिया जाता है और हमसे उसी के अनुसार अपने व्यवहार को ढ़ालने की अपेक्षा की जाती है। जन्म के वक्त ही यह तय हो जाता है कि हमारा चाल–चलन और व्यवहार कैसा होगा, हमारा पहनावा क्या होगा और परिवार या समाज के प्रति हमारी भूमिका क्या होगी। इसी के अनुसार हमें शक्ति या अधिकार प्रदान किये जाते है। इस प्रकार, जेंडर किसी के लिंग पर आधारित नहीं होता, इनका सीधा संबंध समाज में व्यक्ति के स्थिति या शक्ति संबंधों से है। इसका सीधा संबंध सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक व्यवस्था के अंदर महिला या पुरुष के बीच बराबरी या गैरबराबरी से है।

अन्य शब्दों में, समाज यह तय करता है कि हमारा जेंडर क्या होगा। समाज के अंदर हमारी भूमिका, कर्तव्य, आचरण, प्रतिष्ठा, तथा सार्वजनिक और निजी जिंदगी से जुड़ी अन्य सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पहलुओं को भी समाज ही परिभाषित करता है। उदाहरण के तौर पर, किसी का जन्म शारिरिक बनावट के अनुसार पुरुष के रूप में हो सकता है परंतु यह संभव है कि वह अपने आप को पुरुष न समझे, उसे पुरुषों के कपड़े पहनना पसंद न हो, उसे पुरुषों से अपेक्षित कार्य पसंद न हो, या वह पुरुष कहलाना ही नहीं चाहता हो। परंतु जिनका भी जन्म यौनिक रूप से पुरुष के रूप में होता है, समाज उन पर मर्दाना गुण थोप देता है। इसी प्रकार जिनका भी जन्म यौनिक रूप से स्त्री के रूप में होता है, उनके ऊपर स्त्री के आचरण लाद दिए जाते हैं। हम इसे 'प्राकृतिक' या स्वाभाविक मान लेते हैं। लेकिन धीरे–धीरे हम जानेंगे कि यह 'प्राकृतिक' नहीं है बल्कि हम इन आचरणों को एक प्रक्रिया के तहत सीखते हैं और अपने अंदर ढ़ालते हैं।

समाजीकरण (socialisation) प्रक्रिया के तहत जेंडर को हमारे ऊपर थोप दिया जाता है। उदाहरण के रूप में, बचपन से ही लड़कियों को यह बताया जाता है कि उन्हें क्या करना चाहिए और क्या नहीं, उन्हें कैसे कपड़े पहनने चाहिए, उन्हें कैसे बोलना चाहिए, और उन्हें कैसे गुड़ियों से खेलना चाहिए, औजारों से नहीं। लड़कियों को हमेशा झुक कर रहना सिखाया जाता है और घर के काम सीखने को कहा जाता है। दूसरी तरफ लड़कों को बचपन से कहा जाता है कि उन्हें रोना नहीं चाहिए, उन्हें मर्द की तरह पेश आना चाहिए, उन्हें भावुक होने के बजाए आक्रामक होना चाहिए, उन्हें घर के काम नहीं करना चाहिए, और गुड़ियों से खेलने के बजाय उन्हें दूसरे खेल खेलने चाहिए, इत्यादि। इस तरह के लिंग 'अनुचित' आचरण हमें बचपन से ही अपने परिवार, धर्म, मीडिया तथा स्कूल व कॉलेज जैसे सामाजिक संस्थानों के माध्यम से सिखाया जाता है। जब कोई इन बने–बनाए ढ़ाचों में अपने आप को ढ़ाल नहीं पाता तो वह तनाव, मानसिक दबाव, डिप्रेशन, रिजेक्शन, जैसे अनेक समस्याओं से धिर जाता है।

जो लोग समाज द्वारा निर्धारित इन यौनिक आचरणों के अनुरुप अपने आप को ढ़ालने के बजाय इन सामाजिक सीमाओं के परे अपना जीवन जीते हैं – उन्हें 'ट्रांसजेंडर' कहते हैं। जब लोग अपने यौन संबंधी आचरण से भटक जाते हैं या उसके अलग जीवन यापन करने की कोशिश करते हैं, तो उन्हें रूढ़िवादी समाज की भयंकर प्रतिक्रियाओं का सामना करना पड़ता है। आमतौर पर सामाजिक मान्यताओं के बाहर कुछ भी स्वीकार्य नहीं होता है। अगर परिवार का कोई पुरुष अपने आप को ट्रांसजेंडर समझने लगे और लड़कियों के कपड़े पहनने लगे तो लोग उसका मजाक उड़ाएंगे या हो सकता है कि उसे परिवार से निकाल भी दिया

जाए। इसी प्रकार अगर कोई महिला नियम तोड़ कर मर्दों का काम करने लगे, लड़कों के कपड़े पहनने लगे, रात में देर तक घर से बाहर रहे, घर के काम न करें, तो वो लोगों को खटकने लगेगा। लेकिन हमारी ये नकरात्मक प्रतिक्रियाएं सामाजिक मान्यताओं का परिणाम है जिसे बनाया गया है। यह एक विनिर्मित अवधारणा है कि क्या 'सामान्य' है और क्या नहीं। ऐसी विकृत मान्यताओं का विरोध करना चाहिए और ऐसे व्यवहारों को बदलना बहुत जरूरी है।

कुछ परंपराओं, प्रथाओं और रीति–रिवाजों में लिंग आधारित भेदभाव अंतर्निहित है। उन्हें ऐसे पेश किया जाता है जैसे वे सामान्य हों। उदाहरण के रूप में, अगर किसी परिवार में बेटा पैदा होता है तो कई दिनों तक जश्न मनाया जाता है। पर बेटी के जन्म पर सन्नाटा छा जाता है और यहां तक की कभी–कभी तो मां को प्रताड़ित भी किया जाता है जैसे बेटी कोई अभिशाप हो। ऐसे भेदभावपूर्ण तरीकों को 'सामान्य' माना जाता है। शायद ही कभी इन पर कोई सवाल उठाता है।[2]

यू.एस एड : बांग्लादेश में हिजड़ों का समूह

पुरुष और महिलाएं ही केवल दो जेंडर नहीं है। कुछ लोग अपनी पहचान को पुरुष–महिला के इस विभाजन को अलग रख कर देखते है। जैसे भारत में हिजड़ा समुदाय को तीसरे जेंडर के रूप में माना जाता है, जो न ही महिला और न ही पुरुष की श्रेणी में आते हैं। आज इन्हें कानूनी मान्यता भी प्राप्त है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार – प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अपना जेंडर खुद चुन सके।[3] भारत के विभिन्न इलाकों में ट्रांसजेंडर को अलग–अलग नामों से जाना जाता है – जैसे हीजड़ा, कोठी, किन्नर, शिव–शक्ति, या अरावणी। जेंडर आधारित पहचान का बड़ा व्यापक दायरा है और कोई भी व्यक्ति अपने आप को महिला और पुरुष के बीच कहीं भी रख सकता है।

हालांकि जेंडर हमारी पहचान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, लेकिन इसे जाति, धर्म, या वर्ग जैसी श्रेणियों से अलग कर के नहीं देखा जा सकता। हमें इन सभी को एक साथ रख कर देखना चाहिए। क्योंकि ये आपस में मिलकर ही यह तय करते हैं कि किसी व्यक्ति का समाज के अंदर क्या स्थान या हैसियत है।

[2] *Purnima and Mamidipudi, 2015*
[3] *Bearak, 2016*

(2) जेंडर और शक्ति

हमारा समाज शक्ति–संबंधों के विभिन्न श्रेणियों में बंटा हुआ है। वर्ग और जाति इन श्रेणियों के प्रमुख उदाहरणों में से एक है। ये ऐसी श्रेणियां हैं जिससे ये तय होता है कि किसके पास कितनी शक्ति होगी और समाज में किसका अधिपत्य होगा। इसी प्रकार 'जेंडर' भी एक श्रेणी है। यह संसार में 'अदृश्य' शक्ति का सबसे बड़ा उदाहरण है। जेंडर भी यह तय करता है कि किस के पास कितनी शक्ति होगी। अर्थात् जेंडर के संबंध सीधे–सीधे शक्ति के संबंध होते हैं।[4] पुरुष न केवल घर के अंदर महिलाओं के ऊपर अपनी शक्ति का प्रयोग करते हैं, बल्कि निर्णय–निर्धारण प्रक्रिया के उच्चतम स्तर पर भी पुरुषों का बोलबाला होता है। आमतौर पर, महिलाओं के अंदर शक्ति के अभाव को स्वाभाविक और उचित माना जाता है। और मजेदार बात तो ये है कि यह सोच महिला और पुरुष दोनों में बराबर रूप से मौजूद है। इससे निर्णय निर्धारण प्रक्रियाओं से महिलाएं बाहर हो जाती हैं क्योंकि वे प्रभावी रूप से सहभागिता निभा पाने का आत्मविश्वास नहीं जुटा पातीं। इसी वजह से उन्हें जनसभाओं में भी कई बार बोलने से रोक दिया जाता है।

पश्चिम सिंगभुम, झारखण्ड में स्वयं सहातया समूह की बैठक से लौटती हुई महिलाएं (फोटो : दिव्या जैन)

कई लोग इस बात का विरोध करते हैं कि शक्ति को हमेशा किसी के ऊपर इस्तेमाल करने के संबंध में देखा जाता है, जैसे शक्ति का प्रयोग करके किसी को कुछ करने के लिए मजबूर करना। परन्तु शक्ति को अन्य वैकल्पिक रूपों में भी देखा जा सकता है। जैसे कुछ कर पाने की शक्ति के रूप में; या किसी उद्देश्य की प्राप्ति की क्षमता के रूप में; या सामुहिक कार्य से उत्पन्न कोई उर्जा (शक्ति) के रूप में; या आत्मविश्वास, आत्मसम्मान और अस्मिता जैसी अंदरूनी शक्ति के रूप में।[5]

शक्ति को वैकल्पिक रूप से देखना क्यों जरूरी है ? ऐसा इसलिए जरूरी है क्योंकि शक्ति के इन वैकल्पिक विचारों के अनुसार यह जरूरी नहीं है कि शक्ति सब समय शक्तिशाली के पास ही रहती है, और यह भी कि शक्ति हमेशा नकरात्मक या दमनकारी नहीं होती है। इसका एक सकरात्मक पक्ष भी हो सकता है जिसका

---

[4] *Koester 2015*
[5] *Miller and Vene Klasen, 2002*

इस्तेमाल कमजोर या वंचित वर्ग भी कर सकता है। शक्ति के बारे में हमारी सोच यह तय करती है कि शक्ति की संरचना और संबंधों का हम किस प्रकार गठन या पुनःस्थापन करेंगे, या वैकल्पिक रूप से उनका प्रतिरोध करते हुए उन्हें ध्वंस करेंगे।[6]

शक्ति के ये वैकल्पिक विचार उन लोगों के लिए काफी महत्वपूर्ण है जो सामाजिक बदलाव के लिए प्रयासरत हैं, जिनमें समाजिक आंदोलन शामिल हैं। इससे यह पता चलता है कि शक्ति का इस्तेमाल बदलाव लाने के लिए किया जा सकता है।

(3) पितृसत्ता क्या है ?

पितृसत्ता का शाब्दिक अर्थ होता है – पिता का शासन। यह एक सामाजिक व्यवस्था है जहां महिलाएं पुरुषों के अधीन होती हैं, पुरुष उन्हें नियंत्रित करते हैं, और उनके साथ भेदभावपूण बर्ताव किया जाता है। महिलाओं की श्रम शक्ति, उत्पादन शक्ति, प्रजनन शक्ति, लैंगिकता, गतिशीलता, स्वामित्व, संपत्ति तथा अन्य संसाधनों के ऊपर पुरुषों का नियंत्रण होता है और इस तरह महिलाओं को दूसरे दर्जे पर रखा जाता है।

दुनियाभर के करीब सभी समाजों में पितृसत्ता किसी न किसी रूप में मौजूद है। हो सकता है कि उनका स्वरूप अलग–अलग हो। इस व्यवस्था में पुरुषों के पास सारी शक्ति होती है और वो उसका इस्तेमाल महिलाओं पर नियंत्रण बनाए रखने के लिए करता है चाहे वह घर के अंदर या सार्वजनिक जगहों पर। सारे सामाजिक पदों पर पुरुष का कब्जा होता है, पुरुष ही पैतृक संपत्ति के उत्तराधिकारी बनते हैं, तथा परिवार और समाज के सारे निर्णय भी वही लेते हैं। पितृसत्ता का सीधा संबंध पदक्रम से है जिसमें महिला का स्थान पुरुषों के नीचे है। इस व्यवस्था में केवल पुरुष ही महिलाओं को नहीं दबाते हैं बल्कि बुजुर्ग लोग भी जवान लोगों के ऊपर अपने निर्णय थोपते हैं। पितृसत्ता के सिद्धांत और आदर्श को बनाए रखने के लिए पुरुषों और महिलाओं दोनों की भूमिका होती है।

इसका यह अभिप्राय नहीं है कि महिलाओं के पास कोई अधिकार नहीं हैं। पितृसत्ता के नियमों के अनुसार महिलाएं भी

बीकानेर, राजस्थान के पास हथकरघा समूह बैठक में महिलाएं (फोटो : दिव्या जैन)

[6] *Lukes 2005*
[7] *Purima and Mamidipudi 2015*

अपने अधिकारों को प्रयोग करती हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण है – सास का बहु के ऊपर प्रभुत्व या अधिकार। अकसर लोग ये सोचते हैं कि पितृसत्ता का विपरीत मातृसत्ता होता है। भाशा के स्तर पर यह सही हो सकता है पर अगर हम इसे शक्ति के नजरिये से देखें तो ऐसा नहीं है क्योंकि मातृसत्ता बहुत हद तक पितृसत्ता की ही तरह एक व्यवस्था है जहां किसी एक जेंडर का दूसरे के ऊपर शक्ति, प्रभुत्व व अधिकार होता है।[8] इस तरह पितृसत्ता के विपरीत कोई व्यवस्था देखें तो वह मातृसत्ता नहीं है बल्कि वह जेंडर समानता है जहां किसी के जेंडर के आधार पर किसी प्रकार का कोई भेदभाव या प्रभुत्व नहीं है।

ऐसे विचार कि पुरुषों को ही सारे सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक और अन्य संस्थानों को नियंत्रित करना चाहिए एक प्रक्रिया के तहत ऐतिहासिक रूप से उभरे हैं। हिंदुओं के वेद जैसे धार्मिक ग्रंथों में या अधिकतर अन्य धर्मों के अनुसार यह पाया गया है कि हमेशा पुरुषों का ही महिलाओं के ऊपर प्रभुत्व रहा है।

वैदिक काल (1500 से 800 ईसा पूर्व) के दौरान हिंदू संस्कृति में महिलाओं को पवित्र माना जाता था।[9] इसका अर्थ यह था कि महिलाओं को शुद्धता और पवित्रता की मिसाल के रूप में देखा जाता था। इसी काल के दौरान विवाह की प्रथा की शुरुआत हुई जिसके बाद महिलाओं का मुख्य बाध्यता परिवार के अंदर रहकर बेटा पैदा करने का हो गया। वैदिक काल के बाद 500 ईसा पूर्व से 1850 ईस्वी तक महिलाओं की यही दोहरी स्थिति – पवित्र पर अधीन – और ज्यादा पुख़्ता हो गए। महिलाओं को एक तरफ नियंत्रण किये जाने वाली वस्तु माना जाने लगा और दूसरी तरफ़ उसे पूजा जाने लगा। उसे देवी का सम्मान तो मिला लेकिन उन्हें धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने की अनुमति नहीं थी क्योंकि वहां पुरुषों को राज था। धीरे–धीरे परिवार और पतियों द्वारा तय किए गए आदर्शों के आधार पर महिलाओं की भूमिका तय होने लगी। उन्हें इन नियमों का पालन करना पड़ता था। सती जैसी प्रथाओं ने महिलाओं की गुलामी और पतियों के प्रति समर्पण भाव को अनंत ऊंचाई पर पहुंचा दिया। अब तो पति के बिना महिलाओं का कोई अस्तित्व ही नहीं था और उनके बिना उन्हें जीने का अधिकार भी नहीं था।

महेश्वर, मध्य प्रदेश की महिला। थोड़ी देर पहले ही इन्होंने ये धागा तैयार किया है। (फोटा : दिव्या जैन)

ईसाई धर्म के बाइबिल में भी महिलाओं के अधीनता के उदाहरण देखे जा सकते हैं। जैसे आदम और हव्वा की कथा में यह कहा गया है कि हव्वा आदम की पसलियों से बनी है। हव्वा को आदम के अधीनस्थ माना गया है। अगर सारे नहीं

[8] *Purima and Mamidipudi 2015*
[9] *Livne 2015*

तो भी अधिकांश धर्म ऐसे व्यवहार और नियमों को बढ़ावा देते हैं जिसमें पुरुषों का महिलाओं के ऊपर प्रभुत्व होता है।

पितृसत्ता एक राजनीतिक–सामाजिक व्यवस्था है जिसमें सारी सत्ता पुरुषों के पास होती है और जिसका असर निश्चित रूप से हमारी निजी और सामूहिक जीवन के ऊपर पड़ता है। यह महिलाओं और पुरुषों के बीच शक्ति के संबंधों से जुड़ा होता है। महिलाओं की स्थिति जाति और वर्ग आधारित पदक्रम के कारण और भी ज्यादा गंभीर हो जाती है।

हम पितृसत्ता के अलग–अलग सिद्धांतों, रीति–रिवाजों, अपेक्षाओं और समाज के विभिन्न संस्थानों के माध्यम से देख सकते हैं। पितृसत्ता के कुछ सामान्य लक्षण इस प्रकार हैं :[10]

1. ***महिलाओं के अवमूल्यन (उनके महत्व में गिरावट) :*** महिलाओं के ऊपर काम का दोहरा बोझ होता है। वह घंटों तक अवैतनिक (बिना पैसों के) घर का काम करती हैं। कई महिलाएं तो परिवार की अतिरिक्त आमदनी के लिए घर के बाहर भी काम करती हैं। घर के काम को महिलाओं का काम माना जाता है और उन्हें पुरुषों के काम के बराबर का दर्जा कभी नहीं मिलता। यहां भी एक प्रकार की पदक्रम/श्रेणी बनी हुई है, जहां घर के काम को पुरुषों के काम के मुकाबले निम्न श्रेणी का और कम महत्व वाला माना जाता है। परिवार द्वारा घर के काम को 'काम' नहीं माना जाता है। इस तरह अधिकांश महिलाएं दोहरे काम के बोझ तले दबी हुई हैं।

2. ***पारंपरिक रूप से पुरुषों के गुण को केंद्र में रखा गया है जबकि महिलाओं के गुण को गौण माना जाता है :*** पुरुषों और महिलाओं के गुणों को भी ऊंच–नीच में बांट दिया गया है। पितृसत्ता व्यवस्था में पारंपरिक रूप से ताकत, तर्क, नियंत्रण, प्रतिस्पर्धात्मकता, जैसे गुणों को पुरुषों के साथ जोड़ कर देखा जाता है और इन्हें श्रेष्ठ माना गया है। महिलाओं के गुण जैसे भावुक होना, दयालुपन, देखभाल करना, इत्यादि को पुरुषों के गुणों के मुकाबले ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं माना जाता है।

3. ***प्रभुत्व को प्राकृतिक वास्तविकता के रूप में पेश करना :*** पितृसत्ता के अंदर गैर–बराबरी एक निर्विवाद और स्वाभाविक घटना है। ऐसे विचारों को अधीन व्यक्तियों द्वारा सहजता से आत्मसात कर लिया जाता है। वे यह मानने लग जाते हैं कि वास्तव में वो कमजोर हैं क्योंकि उन्हें प्राकृतिक रूप से कमजोर बनाया गया है। केवल पुरुष ही नहीं बल्कि महिलाएं भी यह समझने लगती हैं कि उन्हें कमजोर बनाया गया है। वे दूसरी महिलाओं को भी ऐसे सोचने के लिए मजबूर करती हैं। इन विचारों को चुनौती देने के लिए सामाजिक आंदोलनों द्वारा वैकल्पिक विचारों और सोच को बढ़ावा दिये जाने की काफी आवश्यकता है।

4. ***अधिकारों का अभाव :*** महिलाएं आज मतदान कर सकती हैं। हो सकता है आज की पीढ़ी यह सोचे कि इसमें कौन सी बड़ी बात है। पर इन अधिकारों को प्राप्त करने के लिए महिलाओं को दुनिया भर में एक

---

[10] *Comanne 2010, Serres 2017*

शताब्दी से भी ज्यादा लंबे समय तक संघर्ष करना पड़ा है। ये तो बाबा साहेब अंबेडकर द्वारा लिखे गए संविधान की देन है कि भारत में महिलाओं को बराबर के मानव अधिकार प्राप्त हैं। बाद में बने कानूनों में भी यह सुनिश्चित किया गया कि महिलाओं को संपत्ति का बराबर अधिकार, उत्पीड़न के खिलाफ़ सुरक्षा, विवाह में सुरक्षा, दहेज के खिलाफ़ सुरक्षा, इत्यादि मिले। पर जमीनी हकीकत अलग है। समाज में महिलाओं का दर्जा नीचे होने के कारण इन अधिकारों को प्राप्त करना जरा भी आसान नहीं है। हर कदम पर महिलाओं को संघर्श करना पड़ता है।[11]

5. ***महिलाओं के खिलाफ हिंसा :*** पितृसत्ता में हिंसा को सामान्य माना गया है। ऐतिहासिक रूप से महिलाओं और पुरुषों के बीच मौजूद असमान शक्ति संबंधों का नतीजा है। हिंसा कई तरीके की हो सकती है – शारीरिक (जैसे घरेलू उत्पीड़न या बलात्कार) या मानसिक (जैसे किसी को ब्लैकमेल करना, मानसिक उत्पीड़न, घूरना, पीछा करना, डराना, धमकाना इत्यादि)। कई बार यह पैसों या आर्थिक स्तर पर भी हिंसा की जाती है, जैसे संसाधनों को देने से मना कर देना, पैसों से दूर रखना, कर्ज नहीं देना, एक समान काम के लिए अलग–अलग मजदूरी देना या कोई पैसे नहीं देना इत्यादि। महिलाओं के खिलाफ हिंसा पूरी दुनिया में मौजूद है। हर समाज, हर वर्ग, और हर संस्कृति में ये मौजूद है। भारत में दहेज के लिए बहू को जलाने के मामले, दहेज संबंधी उत्पीड़न या एसिड अटैक जैसी घटनाएं बढ़ रही हैं। घरेलू हिंसा और बलात्कार तो जैसे सामान्य हो गए हैं। कन्या भ्रुणहत्या आज भी जारी है जिससे यह पता चलता है कि महिलाओं के जन्म के पहले से ही उनके खिलाफ हिंसा की शुरूआत हो जाती है।

(4) जेंडर भूमिका क्या है ?

''जेंडर भूमिका'' समाज की सोच दर्शाता है कि महिलाओं और पुरुषों का व्यवहार कैसा होगा। सामाजिकरण (socialisation) प्रक्रिया के माध्यम से लोग इसे सीखते हैं। प्रत्येक समाज में कुछ नियम व आदर्श मौजूद हैं जिनके अनुसार महिलाओं व पुरूषों को अपना व्यवहार करना चाहिए। ऐसा नहीं करने पर समाज के अंदर उन लोगों को दंड का सामना करना पड़ सकता है। उदाहरण के लिए उनका सार्वजनिक मजाक बनाया जा सकता है या लोग उनकी मदद करना छोड़ सकते हैं, इत्यादि।

भारत में पारंपरिक जेंडर भूमिका के अनुसार महिलाओं को घर के अंदर रहना चाहिए और बच्चों की देखभाल करनी चाहिए जबकि पुरुषों को बाहर का काम करना चाहिए और पैसे कमा कर घर लाना चाहिए। अगर रुढ़िवादी परिवार की कोई महिला घर से बाहर निकलना चाहती हो या देर तक घर के बाहर रहना चाहती हो, तो उसे परिवार के विरोध का सामना करना पड़ेगा। इसी प्रकार कोई पुरुष परिवार के लिए पैसे कमाने के बजाय अगर घर के अंदर रहना चाहे और परिवार और बच्चों की देखभाल, खाना बनाना, और साफ–सफाई करना चाहे, तो उसे पुरुष नहीं समझा जाएगा और उसे निंदा का सामना करना पड़ेगा।

[11] *School of Open Learing 2017*

(5) कृषि में जेंडर भूमिकाएं

उत्तराखण्ड की महिला किसान दिन भर चारा इकट्ठा करने के बाद शाम को घर लौटते हुए (फोटा : दिव्या जैन)

सभी समाज के अंदर कृषि क्षेत्र में अलग–अलग भूमिकाओं का स्पष्ट विभाजन है। पारंपरिक रूप से, बीजों का संरक्षण, प्रसंस्करण, पशुपालन एवं उनकी देखभाल का काम महिलाओं द्वारा किया जाता है, जबकि पुरुष अन्य कार्य करते हैं जैसे जुताई इत्यादि। अलग–अलग इलाकों में ऐसे विभाजन सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर बदलते रहते हैं। जैसे कहीं–कहीं हल का इस्तेमाल केवल पुरुषों द्वारा किया जाता है और महिलाओं से अपेक्षा की जाती है कि वह घर पर रहकर अन्य कार्य करेंगी। कुछ अन्य संस्कृतियों में महिलाओं की अपनी कृषि व्यवस्था होती है और वे आमतौर पर घर के बाहर काम करती हैं। आज हमारी संस्कृति में तेजी से बदलाव आ रहे हैं, जिसका असर इन भूमिकाओं पर भी पड़ रहा है। कृषि में महिलाओं की भूमिका बढ़ती जा रही है। दूसरी तरफ विकास नीतियों में महिलाओं के काम को न सिर्फ नजरअंदाज किया जा रहा है बल्कि कम करके आंका जा रहा है। कुछ कृषि कार्यों में (जैसे प्रसंस्करण, भंडारण, इत्यादि) तो महिलाओं की संख्या पुरुषों के मुकाबले बहुत ज्यादा है।[12]

भारत के विभिन्न क्षेत्रों और संस्कृतियों में महिलाओं और पुरुषों की भूमिकाओं में यह अंतर बना हुआ है। जाति और वर्ग के आधार पर भी यह फासला और बढ़ जाता है। एक आम धारणा यह है कि महिला कृषि मजदूर और कृषि मजदूर वर्ग की महिलाएं एक विशिष्ट जाति से आती हैं इसीलिए उन्हें खेतों में काम करना पड़ता है। अन्य जातियों या परिवारों की महिलाएं आम तौर पर घर के बाहर खेतों में काम नहीं करती हैं। पर घर के अंदर रहकर भी वे कृषि कार्यों में अपनी भूमिका निभाती हैं, जैसे बीजों का रख–रखाव, पशुपालन और प्रसंस्करण, इत्यादि।

[12] *Das 2015*

कैसे पूंजीवादी हस्तक्षेप/पारंपरिक खेती ने जेंडर संबंधों को बदल दिया है और महिलाओं को बेदखल किया है

कृषि में महिलाओं की भूमिका के ऊपर कई गहन अध्ययन किए गए हैं। इन अध्ययनों[13] ने इस धारणा को गलत साबित किया है कि आधुनिकीकरण के कारण महिलाओं की स्थिति सुधरेगी। 1970 के दशक में अफ्रीका में किए गए एक अध्ययन से यह पता चलता है कि कृषि व्यवस्था के अंदर महिलाओं की भूमिका धीरे–धीरे कम होती जा रही थी। पूंजीवादी व्यवस्था के कारण वहां की महिलाओं द्वारा की जा रही निर्वाह खेती तबाह हो रही थी। पूंजीवादी कृषि व्यवस्था में केवल पुरुषों को ही कृषि के केन्द्र में रखा जाता है। इसलिए जब उपनिवेशवादियों ने आधुनिक तकनीकों और नगद फसलों के ऊपर किसानों को प्रशिक्षण देना शुरू किया तो उनका ध्यान केवल पुरुष किसानों के ऊपर ही था। इसके कारण उत्पादन में गिरावट देखी गई। इसके अलावा उपनिवेशवादियों द्वारा जब भूमि का निजी स्वामित्व की शुरुआत की तो ग्रामीण इलाकों में महिलाओं की स्थिति और भी कमजोर होती गई, क्योंकि जमीनों का पंजीकरण केवल पुरुषों के नाम पर हो रहे थे। इस प्रकार अफ्रीका में महिलाओं की हैसियत उत्पादक और कृषक से घट कर धीरे–धीरे केवल अवैतनिक मजदूर की हो गई।

आज के समय में पारंपरिक खेती के अंदर महिलाओं की भूमिका देखें तो हम पाते हैं कि उनकी स्थिति में कोई ज्यादा बदलाव नहीं आया है। IFOAM[14] द्वारा तैयार की गई एक सूची के माध्यम से हम देख सकते हैं कि कैसे पारंपरिक खेती की दुनिया केवल पुरुषों की दुनिया है; और यह कैसे जेंडर भेदभाव को प्रोत्साहित करता है।

- यह महिलाओं को खेत खरीदने में अड़चनें पैदा करता है, क्योंकि मशीन और कीटनाशक, खाद, और GMO जैसी सामग्रियों को हासिल करने के लिए बहुत ज्यादा शुरुआती निवेश की जरूरत पड़ती है।
- इसमें रसायनिक खाद और कीटनाशकों का इस्तेमाल होता है जिससे मजदूरों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। कीटनाशकों के इस्तेमाल से, खासतौर पर महिलाओं की प्रजनन स्वास्थ्य के ऊपर बहुत बुरा असर पड़ता है। इससे गर्भपात और दोषपूर्ण बच्चे पैदा होने की संभावना बढ़ जाती है।
- इस तरह की खेती में पेटेंट कानून का इस्तेमाल करके हमारे बीज और पारंपरिक ज्ञान के ऊपर निजी कंपनियों का नियंत्रण होता जा रहा है। आज पूरी दुनिया का तीन–चौथाई बीज बाजार (75 प्रतिशत) के ऊपर केवल 10 बहुराष्ट्रीय कंपनियों का कब्जा है। किसानों की पकड़ अपने बीज और अपने पारंपरिक ज्ञान के ऊपर से छूटती जा रही है।[15]
- इससे पर्यावरण को भी क्षति पहुंचती है। इसके साथ विस्थापन भी जुड़ा हुआ है जिसका बुरा असर विशेष रूप से महिलाओं और बच्चों के ऊपर पड़ता है।
- बाजार को ध्यान में रखते हुए एक–फसलीय खेती (monoculture) पर ज्यादा जोर दिये जाने की वजह से ज़मीन और संसाधनों का इस्तेमाल भोजन उत्पादन के अलावा अन्य चीजों पर होने लगता है। इससे भोजन की उपलब्धता पर बुरा असर पड़ता है। परिवार के अंदर भोजन की जिम्मेदारी आमतौर पर महिलाओं के ऊपर होती है।

[13] *Ester Boserup's 1970* [14] *IFOAM 2007* [15] *Gura 2013*

कृषि में महिलाएं

''हिमालय के क्षेत्र में 1 साल के अंदर एक पुरुष एक हेक्टेयर के खेत में अंदाजन 1212 घंटे काम करता है, 1 जोड़ी बैल करीब 1064 घंटे काम करते हैं, परंतु एक महिला इतने बड़े खेत में करीब 3485 घंटे काम करती है (पुरुषों से तीन गुना ज्यादा)''[16]

(1) कृषि में भारतीय महिलाओं की स्थिति[17]

a. ***कृषि का स्त्रीकरण (feminisation) :*** जैसे–जैसे कृषि संकट गहराता जा रहा है, खेती से आमदनी भी कम होती जा रही है। पैसे कमाने के लिए पुरुष धीरे–धीरे गांव छोड़कर शहर की ओर पलायन कर रहे हैं। अपने पीछे वो महिलाओं को छोड़ जाते हैं खेतों की देखभाल करने के लिए। धीरे–धीरे खेती महिलाओं का कार्य बनता जा रहा है। आज खेती में केवल 48 प्रतिशत पुरुष मजदूर हैं, जबकि महिला मजदूरों का कुल 75 प्रतिशत खेती के कार्य कर रहा है। यही नहीं यह फासला धीरे–धीरे बढ़ता जा रहा है। इसे महिलाओं के सशक्तिकरण के रूप में बिलकुल नहीं देखना चहिए क्योंकि अब वे खेती के कार्यों को नियंत्रित कर रही हैं। वास्तविकता बिलकुल अलग है। महिलाएं अब वो काम तो कर रही हैं जो पहले पुरुषों द्वारा किए जाते थे (जैसे जमीन की तैयारी, जुताई, बुवाई, कीटनाशकों का छिड़काव, कटाई, निराई, सफाई, धुनाई, और उत्पादों को बाजार में बेचना) पर ये सारा काम करने के लिए है उन्हें पुरुषों से कम मजदूरी मिलती है। साथ ही उत्पादन संसाधनों और उससे जुड़ी सेवाओं के ऊपर महिलाओं का अधिकार न के बराबर होता है।

मणिपुर की एक महिला किसान (फोटो : रुचा चिटनिस)

b. ***परिवार की खाद्य सुरक्षा के प्रति महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका आज भी अदृश्य है :*** महिलाओं का कार्य को अक्सर अनौपचारिक, अवैतनिक (बिना पैसों के) और घरेलू कार्य के रूप में देखा जाता है।

---

[16] *Shiva 1991*

[17] *Kelkar 2007, Saxena 2012, Mun Ghosh and Ghosh 2014, MAKAAAM 2016*

उदाहरण के लिए पशुपालन व उनकी देखभाल को सामान्य घरेलू कार्य के रूप में माना जाता है, बावजूद इसके कि खाद्य उत्पादन और खेती की गतिविधियों में महिलाओं का महत्वपूर्ण योगदान होता है – जैसे जमीन की तैयारी, बीजों का चयन, चारा उत्पादन, बुवाई, खाद डालना, निराई, रोपाई, धुनाई, कटाई, इत्यादि। महिलाओं द्वारा किए गए इन कार्यों को मान्यता प्राप्त नहीं है। इसीलिए इन कार्यों का मूल्य सही तरीके से नहीं लगाया जाता। महिलाएं या तो बिना भुगतान के या काफी कम भुगतान पर इन कार्यों को करने के लिए मजबूर हैं। इसके अलावा भी महिलाएं कई अन्य कार्य करती हैं, जैसे लकड़ियां चुनना, पशुओं के लिए चारा इकट्ठा करना, पीने के पानी का इंतजाम करना, इत्यादि। ज्यादातर समय महिलाओं को किसान समझा ही नहीं जाता। उन्हें एक सहायक या मजदूर के रूप में देखा जाता है। इसकी एक वजह यह है कि जमीन के कागजों में महिलाओं का नाम भूमि मालिक के रूप में दर्ज नहीं होता है और उत्पादन संसाधनों के ऊपर इनका नियंत्रण नहीं के बराबर होता है।

c. ***भूमि और उत्पादन संसाधनों का अभाव :*** बावजूद इसके कि आज कृषि क्षेत्र में महिलाओं की संख्या पुरुषों से ज्यादा है, पर फिर भी जमीन के ऊपर उनका कोई नियंत्रण नहीं है।

वर्ष 2005 में 'हिंदु उत्तराधिकार अधिनियम' में संशोधन के बाद से बेटे और बेटियों दोनों कृषि भूमि में बराबर के उत्तराधिकारी हैं। पांच दक्षिणी राज्यों – तमिलनाडु, केरल, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और महाराष्ट्र – में पहले से ही ये कानून बने हुए हैं। परन्तु 8 साल बाद भी जमीनी हकीकत यह है कि आज भी महिलाओं को विरासत में पुरुषों के बराबर जमीन नहीं मिलती है। सामाजिक क्रिया–कलाप अभी भी महिलाओं को जमीन का उत्तराधिकारी बनने से रोक रही हैं।

लेंडेसा (LANDESA) द्वारा किए गए एक अध्ययन से यह पता चलता है कि केवल 10 प्रतिशत महिलाओं के पास जमीन है।[18] महिलाओं के कानूनी अधिकार और उन्हें विरासत में प्राप्त जमीन के बीच गहरा अंतर है। इसके अलावा जिन थोड़ी महिलाओं को विरासत में जमीन मिली भी है तो उस जमीन पर उनका नियंत्रण नहीं है। इसके पीछे दो प्रमुख कारण है – (1) जेंडर आधारित पहचान और आचरण जो अक्सर महिलाओं को जमीन के अधिकार से दूर करते हैं; और (2) पुरुष आदर्शों पर आधारित संस्थानिक प्रक्रियाएं जिनका रवैया सभी जेंडर के प्रति समान नहीं है।

महिलाओं को विरासत में जमीन नहीं दिए जाने के पीछे सबसे बड़ा तर्क यह दिया जाता है कि बेटियों के नाम जमीन करने से जमीन बंट जाती है, जबकि अगर बेटों के नाम जमीन की जाए तो वह परिवार के अंदर ही रहती है। यह तर्क बिलकुल गलत है।[19] किसी भी प्रकार से यह इस बात को उचित नहीं ठहराता कि महिलाओं को विरासत में जमीन नहीं दी जानी चाहिए। जमीन के टुकड़े तो तब भी होते हैं जब जमीन बेटों के नाम की जाती है। दरअसल कई ग्रामीण परिवार संयुक्त रूप से खेती करते हैं जबकि उसके छोटे–छोटे टुकड़े निजी रूप से अलग–अलग लोगों के नाम होते हैं। एक दूसरा तर्क

[18] *Sircar and Pal 2014*
[19] *Velayudhan 2009*

चित्र 1 : बेटियों को विरासत में मिली जमीन वह जमीन जो बेटियों को विरासत में मिलनी चाहिए थी

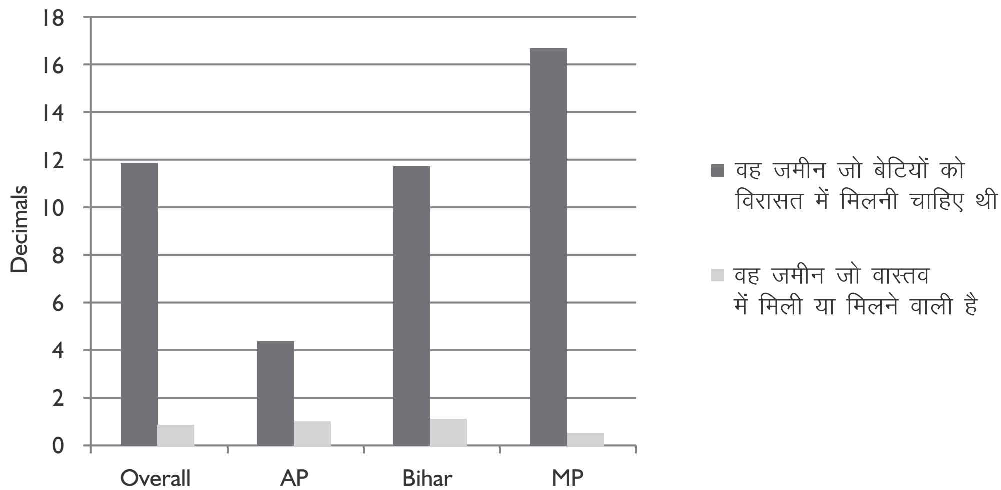

Source : (Sircar and Pal 2014)

यह दिया जाता है कि शादी के बाद महिलाएं घर छोड़कर चली जाती हैं। लेकिन यह सवाल पुरुषों के लिए भी उतना ही जायज़ है क्योंकि वे भी तो काम के लिए पलायन करते हैं। जब घर छोड़ने की स्थिति में पुरुषों को जमीन विरासत में दी जा सकती है तो महिलाओं को क्यों नहीं ?

d. ***संस्थानिक ऋण का अभाव :*** अधिकांश महिलाएं भूमिहीन होती हैं। इसलिए उन्हें पशुपालन के अलावा किसी और कार्य के लिए ऋण नहीं मिलता। ऋण का संबंध सीधे तौर से जमीन के साथ जुड़ा होता है। यह एक गंभीर समस्या है क्योंकि कई राज्यों में पुरुषों का पलायन दर काफी ज्यादा है और खेती का सारा बोझ महिलाओं के ऊपर होता है लेकिन जमीन का मालिकाना हक नहीं होने की वजह से वे ऋण या सरकारी स्कीमों से वंचित रह जाती हैं।[20]

e. ***जेंडर के आधार पर मजदूरी में गैरबराबरी :*** यह पुरुषों और महिलाओं के बीच एक प्रकार का आर्थिक भेदभाव है। बावजूद इसके कि महिलाएं अपनी कमाई का ज्यादातर हिस्सा परिवार की जरूरतों को पूरा करने के लिए इस्तेमाल करती हैं लेकिन फिर भी उनकी मजदूरी पुरुषों की तुलना में काफी कम होती है। राष्ट्रीय सैंपल सर्वे के अनुसार राष्ट्रीय स्तर पर महिलाएं पुरुषों से 20 प्रतिशत कम कमाती हैं।[21]

जेंडर के आधार पर मजदूरी में यह फासला ग्रामीण इलाकों में ज्यादा बड़ा होता है। अलग–अलग क्षेत्रों के अनुसार यह फासला कम और ज्यादा होता रहता है। भारत के विभिन्न इलाकों में मजदूरी में यह फर्क 70 से 90 प्रतिशत के बीच देखा गया है। उत्तर के राज्यों में सामान्य तौर पर यह फासला दक्षिणी राज्यों के मुकाबले कम पाया गया है। इसका अर्थ यह है कि उत्तर के राज्यों में दक्षिणी राज्यों

[20] *Oxfam 2016*
[21] *Jain 2014*

के मुकाबले महिलाओं और पुरुषों की आमदनी में ज्यादा फासला नहीं है बावजूद इसके कि दक्षिण भारत में महिलाओं को सांस्कृतिक रूप से घर के बाहर काम करने की ज्यादा छूट है। ऐसा इसलिए हो सकता है कि वहां मुख्य रूप से धान की खेती होती है जिसमें महिलाओं के ज्यादा श्रम की आवश्यकता होती है। एक अंदाजा यह भी है कि दक्षिण के राज्यों में महिला मजदूरों की तादाद बहुत ज्यादा है और इसलिए उनकी मजदूरी तुलनात्मक रूप से कम है।[22]

नीचे दी गई तालिका में हम यह देख सकते हैं – (1) नियमित मजदूरी या वेतन प्राप्त कर्मचारियों में पुरुष और महिलाओं के बीच मजदूरी में औसत अंतर (2009–2010); (2) भारत में मजदूरी के अनुपात में क्षेत्रीय उतार–चढ़ाव। तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि उत्तर के राज्यों में मजदूरी का अनुपात दक्षिण के राज्यों के मुकाबले ज्यादा है; (3) विभिन्न कृषि कार्यों में पुरुष और महिलाओं के बीच मजदूरी में अंतर।

तालिका 2 : नियमित मजदूरी/वेतन कर्मचारियों द्वारा प्राप्त औसत मजदूरी/वेतन प्रतिदिन (2009–2010)

राज्य	**ग्रामीण**		**भाहरी**	
	पुरुष	महिला	पुरुष	महिला
आंध्र प्रदेश	198.31	93.84	341.63	248.05
असम	248.31	95.00	491.19	380.92
बिहार	252.59	271.76	338.31	500.75
गुजरात	187.02	178.08	306.58	221.35
हरियाणा	299.11	202.04	316.91	330.10
हिमाचल प्रदेश	360.08	224.78	487.56	435.70
जम्मू व कश्मीर	328.11	335.82	379.61	321.86
कर्नाटक	195.08	112.60	414.95	293.37
केरल	290.79	213.29	450.76	320.61
मध्य प्रदेश	154.03	138.15	325.15	230.33
महाराष्ट्र	293.76	164.51	439.30	391.71
उड़िसा	293.76	151.72	358.89	238.48
पंजाब	263.01	136.72	342.35	374.49
राजस्थान	261.55	112.99	374.42	317.85
तमिलनाडु	256.49	161.47	319.60	277.23
उत्तर प्रदेश	235.60	148.11	360.29	285.54
पश्चिम बंगाल	180.21	97.29	391.77	277.08
भारत	**249.15**	**155.87**	**377.16**	**308.79**

[22] *Mahajan 2011*

चित्र 3 : मजदूरी अनुपात में स्थानीय अंतर, 2004

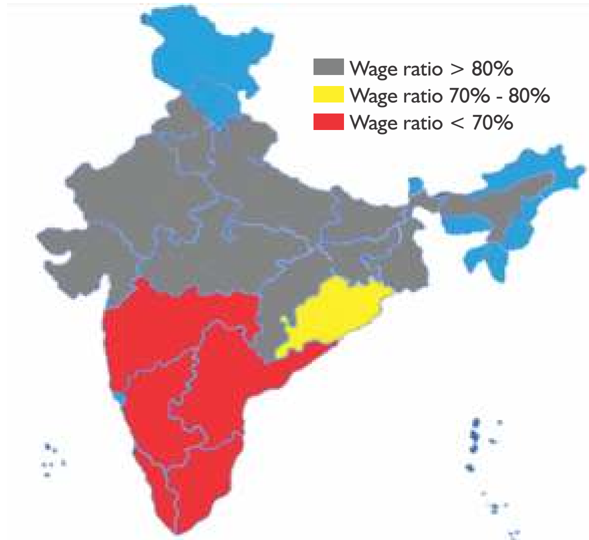

Source : Labour Bureau, RLE Reports on wages and Earnings of Rural Labour Household, 2009-10, Shimla

तालिका 4 : वर्ष 2008–2009 के दौरान कृषि कार्य में अखिल भारतीय वार्षिक औसत रोजाना मजदूरी दर

कृषि कार्य	पुरुष	महिला
जुताई	102.90	55.43
रोपाई	90.00	65.00
कुटाई	85.06	67.66
निराई	80.15	68.02
चुन्ना / उठाना	81.02	66.37

Source : Price & Wage in Rural India (New Series) NSSO

f. ***कृषि एक्सटेंशन सेवा से वंचित रहना :*** क्योंकि महिलाओं को किसान के रूप में नहीं माना जाता है इसीलिए कृषि एक्सटेंशन सेवा और जानकारियों को पुरुषों के लिए ही निर्देशित की जाती हैं। बावजूद इसके कि अधिकांश कृषि कार्य महिलाएं करती हैं पर फिर भी ऐसे कार्यक्रमों का अभाव है जो महिलाओं को केंद्र में रखकर बनाए गए हों। इसके अलावा महिला एक्सटेंशन कर्मचारियों की भी कमी है।

एम. एस. स्वामीनाथन, जो राज्यसभा के सदस्य हैं, ने 2011 में महिला किसान हकदारी विधेयक (Women Farmer's Entitlement Bill), 2011 पेश किया था जिसमें महिलाओं को भूमि तथा अन्य सेवाएं के लिए कानूनी अधिकार और हकदारी प्रदान करने का प्रस्ताव था। यह विधेयक संसद में पारित नहीं हो सका क्योंकि किसी ने भी इसमें अपनी रुचि नहीं दिखाई। ऐसे ही एक और विधेयक संयुक्त राष्ट्र और राष्ट्रीय महिला आयोग की मदद से 'मकाम' (MAKAAM) द्वारा तैयार किया जा रहा है। 'मकाम' एक राष्ट्रीय नेटवर्क है जिसमें 70 से भी ज्यादा महिला किसान संगठन शामिल हैं। अगर यह विधेयक पास हो जाता है तो महिलाओं की स्थिति में बहुत बड़ा बदलाव आ सकेगा। फिर महिलाओं को न सिर्फ किसान के रूप में स्वीकार किया जा सकेगा बल्कि उन्हें किसान के अधिकार भी प्राप्त हो सकेंगे।

(2) ग्रामीण महिलाओं के अधिकार व हकदारी[23]

भारत के संविधान में प्रत्येक नागरिक को मानव अधिकार प्राप्त है जिन्हें मौलिक अधिकार के रूप में जाना जाता है। ये मौलिक अधिकार हैं – बराबरी का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, अपना धर्म चुनने का

[23] *Purima and Mamidipudi 2015*

अधिकार, शोषणमुक्त जीवन का अधिकार, भोजन का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, रोजगार का अधिकार, इत्यादि। ये मौलिक अधिकार हैं; कोई दान या अहसान नहीं हैं। इन अधिकारों को सुनिश्चित करना नागरिकों के प्रति सरकार की जिम्मेदारी है।

Infographic Source : Purnima and Mamidipudi 2015

भारत के नागरिक के रूप में महिलाओं को भी पुरुषों के बराबर मौलिक अधिकार प्राप्त हैं। भारत सरकार ने ग्रामीण महिलाओं के लिए इन अधिकारों की पूर्ति के लिए कई उपाय किये है। अन्य अंतरराष्ट्रीय कानूनी व्यवस्थाएं जैसे ''मानव अधिकार पर सार्वभौमिक घोषणा पत्र'' और ''महिलाओं के खिलाफ भेदभाव को खत्म करने के लिए समिति'' भी इन अधिकारों को मौलिक अधिकार के रूप में प्रोत्साहित करते हैं।

भारत का संविधान सभी नागरिकों को बराबरी का अधिकार देता है, चाहे वह किसी भी जेंडर, धर्म या जाति से हो। इस प्रकार महिलाओं के पास कुछ संवैधानिक अधिकार हैं जैसे मतदान का अधिकार, भोजन का अधिकार, संपत्ति का अधिकार, काम का अधिकार, सामाजिक सुरक्षा अधिकार, और आर्थिक समावेश अधिकार, इत्यादि। महिलाएं सरकार से इन अधिकारों की मांग कर सकती हैं। इन मांगों को हासिल करने के लिए महिलाओं को सामुहिक कार्यक्रम आयोजित करना चाहिए जिसमें स्थानीय एनजीओ और सामाजिक आंदोलन अपना योगदान दे सकते हैं। पारिस्थितिकी कृषि का कोई भी कार्यक्रम तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक महिलाओं के इन अधिकारों, हकदारी और नागरिकता से जुड़े सवालों के ऊपर बहस न की जाए।

पारिस्थितिकीय कृषि : अनुकूलता बनाम परिवर्तन

पारिस्थितिकीय कृषि वर्षों के प्रयास के बाद विकसित हुई है। वैज्ञानिक, किसान और उपभोक्ता आंदोलनों ने इसे तकनीकी क्षेत्र से बाहर निकाल कर एक सामाजिक और राजनीतिक आंदोलन का स्वरूप प्रदान किया है। खाद्य संप्रभुता की ही तरह, परिस्थितिकीय खेती ने भी कृषि के राजनीतिक पक्ष को दुबारा से उभारा है। कई लोग इसे खाद्य संप्रभुता के साथ जोड़ कर देखते हैं और सामाजिक न्याय इसका एक अभिन्न अंग है।

पर अलग–अलग जगह पारिस्थितिकीय कृषि को अलग–अलग तरीके से देखा जाता है। इसकी इतने सारे परिभाषाएं है कि आज यह एक विवादास्पद विचार बन गया है। विभिन्न समुदायों और समूहों ने इसे अलग–अलग तरीके से परिभाषित किया है। कई बार ये परिभाषाएं आपस में मेल ही नहीं खातीं। इसलिए पारिस्थितिकीय कृषि की परिभाशा महत्वपूर्ण हो जाती है। ऐसा जरूरी नहीं है कि हर तरह की पारिस्थितिकीय कृषि से मुक्ति का उद्देश्य पूरा होता हो, न ही उसमें यह क्षमता हो कि वह सामाजिक गैरबराबरी से निपट सके। परिस्थितिकी कृषि की कुछ अवधारणाएं विशुद्ध रूप से तकनीकी स्वभाव की पाई गई हैं, जबकि कई अन्य जगहों पर लोगों ने रसायनिक पद्धति से उत्पादन में कहीं–कहीं थोड़ा–बहुत पारिस्थितिकीय सिद्धांतों को जोड़ दिया है। हालांकि परिस्थितिकीय कृषि की तमाम अवधारणाओं के बीच एक मोटा–मोटी समानता जरूर दिखती है, जैसे जेंडर के प्रति प्रतिबद्धता। पर फिर भी इनमें कई मौलिक मतभेद मौजूद हैं। उदाहरण के लिए जैसे सामाजिक आंदोलनों द्वारा प्रोत्साहित पारिस्थितिकीय कृषि जेंडर समानता के लिए प्रतिबद्ध होती है, ठीक उसी तरह कॉर्पोरेट घरानों की 'क्लाइमेट स्मार्ट खेती' (जो पारिस्थितिकीय पर आधारित है) में भी जेंडर समानता को एक प्रमुख लक्ष्य के रूप में शामिल किया गया है।[24] लेकिन आगे हम देखेंगे कि इन दोनों अवधारणाओं में कितना बड़ा मौलिक अंतर है।

उदाहरण के लिए, पारिस्थितिकीय कृषि की सरकारी परिभाषा सामाजिक आंदोलनों की परिभाषा से काफी अलग है।[25] अगर हम फ्रांस का उदाहरण लें तो फ्रांसीसी राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान संस्थान (INRA) ने पारिस्थितिकीय कृषि को अपने वर्ष 2010–2020 के अनुसंधान योजना में शामिल किया है। परन्तु नागरिक समाज समूहों और किसानों के नेटवर्क का यह कहना है कि फ्रांसीसी सरकार ने केवल जुताई–रहित (no till method) खेती (और वो भी शाकनाशक के छिड़काव के साथ) को प्रोत्साहित कर रही है। पारिस्थितिकीय कृषि को लेकर फ्रांसीसी सरकार की यह अवधारणा जमीनी संगठनों की अवधारणा से बिलकुल मेल नहीं खाती। संगठनों की सरकार से यह मांग है कि वो ऐसे कृषि सुधार को प्रोत्साहित करे जिससे विविधतापूर्ण जैविक कृषि को फायदा पहुंचे। उनके अनुसार पारिस्थितिकीय कृषि वो होती है जिसमें उत्पादक–उपभोक्ता में निकटता हो, जिससे रोजगार का सृजन हो, एक समन्वय अर्थव्यवस्था (solidarity economy) उभरे, और नागरिकों के लिए विविध खाद्य उत्पादन हो सके।

स्पष्ट है कि पारिस्थितिकीय कृषि का दूसरा विचार बहुत राजनीतिक है और खाद्य व्यवस्था को सम्पूर्ण रूप से संबोधित करता है, जबकि पहली परिभाषा इसे हरित औद्योगिक खेती के एक तरीके के रूप में देखता है।

---

[24] *World Bank et al. 2015*

[25] *Pimbert 2015*

इसी प्रकार का एक दूसरा उदाहरण है – संयुक्त राष्ट्र के ''खाद्य और कृषि संगठन'' (FAO) की परिभाशा जिसने कुछ समय पहले ही पारिस्थितिकीय कृषि को प्रोत्साहित करना शुरू किया है। नागरिक समाज संगठन इस बात से तो खुश हैं कि पारिस्थितिकीय कृषि को इतना महत्व दिया गया पर साथ ही वे ''खाद्य और कृषि संगठन'' (FAO) के नजरिए की आलोचना भी कर रहे हैं। ''खाद्य और कृषि संगठन'' (FAO) पारिस्थितिकीय कृषि को खेती का एक उपाय के रूप में देखता है जिसके जरिए औद्योगिक कृषि की कमियों और समस्याओं को दूर कर सकें। FAO के कार्यक्रम में ''क्लाइमेट स्मार्ट कृषि'' के नाम से कई नई विवादास्पद और पर्यावरण के लिए नुकसानदायक तकनीकें भी शामिल हैं जैसे जुताई–रहित शाकनाशक प्रतिरोधक फसलें, आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलें (जीएमओ) और पशु, जहरीले कीटनाशक इत्यादि।[26] 'क्लाइमेट स्मार्ट कृषि' के अंतर्गत पारिस्थितिकीय कृषि का एक छोटा सा हिस्सा है। इसके कई अन्य हिस्से ऐसे हैं जो पारिस्थितिकीय कृषि के सिद्धांतों के विपरीत हैं। FAO की यह अवधारणा लॉ विया कम्पेसिना (LVC) जैसे सामाजिक आंदोलनों की सोच से बिलकुल अलग है जिनके लिए पारिस्थितिकीय कृषि मौजूदा कृषि खाद्य व्यवस्था को बदलने का एक बेहतरीन विकल्प है।[27] ये आंदोलन पारिस्थितिकीय कृषि को जलवायु, ऊर्जा और आर्थिक संकट – जिसमें सामाजिक–असमानता भी शामिल है – के समाधान के रूप में देखते हैं। इन समस्याओं का एक बड़ा कारण वे औद्योगिक कृषि को मानते हैं।

यहां 'बदलाव' या 'परिवर्तन' बहुत महत्वपूर्ण है। पारिस्थितिकीय कृषि मौजूदा खाद्य व्यवस्था को पूरी तरह से बदलने की बात करता है। दूसरी तरफ बहुराष्ट्रीय कंपनियों की कोशिश रहती है कि पारिस्थितिकीय कृषि को मौजूदा औद्योगिक कृषि के अनुकूल बनाकर उसमें थोड़ा सा हरा रंग भर दें।

विश्व बैंक और 'क्लाइमेट स्मार्ट कृषि' दोनों ही अब जेंडर समानता की बात करने लगे हैं।[28] वे महिलाओं के लिए ऋण, भूमि, संसाधन उपलब्ध कराने के साथ–साथ महिलाओं के प्रति जिम्मेदार कृषि नीतियां इत्यादि बनाने की बातें करते हैं। एक बार तो ऐसा लगता है कि इनके विचार पारिस्थितिकीय कृषि से बिलकुल मेल खाते हैं। लेकिन सोचने की बात यह है कि लंबे समय में 'क्लाइमेट स्मार्ट कृषि' कैसे पुरुष और महिलाओं को प्रभावित करेंगी जब वे पहले जैसी व्यवस्था को ही प्रोत्साहित करेंगे जिसमें बाहरी कॉर्पोरेट तकनीकों और सामग्रियों के ऊपर किसान की निर्भरता बरकरार रहेगी। अंततः यह सब कुछ कंपनियों के मुनाफे के साथ जुड़ा है, न कि लोगों के अधिकारों से। मौजूदा प्रक्रियाओं से बाजार / कंपनियों के ऊपर निर्भरता बढ़ी है, कर्ज गहराया है, और अब तक का सबसे बड़ा मानवीय संकट – किसानों की आत्महत्या – लगातार बढ़ती जा रही हैं। बाहरी सामग्रियों और बाजार के ऊपर निर्भरता कभी भी किसानों और विशेषरूप से महिलाओं की स्थिति को सुधरने नहीं देगी। दूसरी तरफ पारिस्थितिकीय कृषि का संबंध स्वतंत्रता और स्वायत्तता से है। स्वायत्तता का मतलब आजादी और आत्मनिर्भरता है। जब किसान परिवार अपने ही बीजों के ऊपर, विविधतापूर्ण खाद्य उत्पादन और पारिस्थितिकीय कृषि के ऊपर भरोसा करेंगे तो उनके पास कर्ज, बाहरी सामग्री, और नुकसानदायक रसायन से मुक्त जीवन जीने का अवसर मिलेगा। परिस्थितिकीय कृषि का प्रमुख उद्देश्य किसानों को निजी कंपनियो और बाहरी सामग्रियों से मुक्ति दिलाकर आत्मनिर्भर बनाने का है। आगे हम पढ़ेंगे कि कैसे पारिस्थितिकीय कृषि महिलाओं के लिए लाभकारी है और ऐसे सफल उदाहरणों को जानेंगे जहां बिना मालिकाना हक के भी महिलाओं ने परिस्थितिकीय कृषि के जरिए अपनी जिंदगी को बेहतर बनाया है।

[26] *Pimbert 2015*   [27] *Nicholls 2014*   [28] *World Bank et al. 2015*

क्या पारिस्थितिकीय खेती जेंडर समानता ला सकता है ?

''अगर आधूनिकिकरण ने कृषि जेंडर संबंधों को परिवर्तित किया है और महिलाओं को निर्णय–निर्धारण प्रक्रिया से दूर किया है, तो यह सवाल उठता है कि पारिस्थितिकीय कृषि जैसी वैकल्पिक धाराएं कैसे महिलाओं के लिए ज्यादा शक्ति का निर्माण कर सकती हैं''[29]

अब यह स्पष्ट को गया है कि सारी पारिस्थितिकीय कृषि एक समान नहीं होती है। ऐसे में यह समझना बहुत महत्वपूर्ण है कि पारिस्थितिकीय कृषि के लिए प्रतिबद्ध सामाजिक आंदोलन, एनजीओ, समुदाय और कार्यकर्ताओं द्वारा अपने आप जेंडर समानता के लक्ष्य को हासिल नहीं कर पाएंगे जब तक कि वे उसके प्रति उद्देश्यपूर्ण तरीके से प्रतिबद्ध न हों। आज पारिस्थितिकीय कृषि/या जैविक खेती आंदोलनों में शामिल महिलाओं की एक प्रमुख आलोचना यह है कि जेंडर के क्षेत्र में और ज्यादा ठोस प्रयास किए जाने की आवश्यकता है।

परिस्थितिकीय खेती (या जैविक खेती) में जेंडर के लिए वे संभावनाएं तब तक पूरी नहीं हो सकती हैं जब तक कि प्रतिबद्ध वैकल्पिक किसानों और उपभोक्ताओं द्वारा ठोस कदम न उठाए जाएं। इन प्रयासों को न सिर्फ वैकल्पिक कृषि आंदोलनों के रूप में देखा जाना चाहिए बल्कि इन्हें जेंडर समानता को समर्पित सामाजिक न्याय आंदोलनों के रूप में देखना होगा।[30]

बावजूद इसके कि पारिस्थितिकीय कृषि आंदोलनों ने सामाजिक न्याय सिद्धांतों (जिसमें जेंडर बराबरी भी शामिल है) के प्रति अपनी प्रतिबद्धता जाहिर की है, पर महिला किसानों का कहना है कि सिर्फ मौखिक प्रतिबद्धता से तब तक बात नहीं बनेगी जब तक उन्हें अपने व्यवहार में शामिल न किया जाए।[31] उदाहरण के लिए क्युबा के विख्यात पारिस्थितिकीय कृषि आंदोलन से हम यह सीख सकते हैं कि परिवार के अंदर निर्णय–निर्धारण में महिलाओं की भूमिका बढ़ने के बावजूद भी पारिस्थितिकीय कृषि आंदोलन के अंदर जेंडर बैलेंस में सुधार नहीं आया। नेतृत्व के स्तर पर महिलाओं का प्रतिशत पुरुषों के मुकाबले काफी कम था।[32] इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं आंदोलन में महिला कार्यकर्ताओं की भर्ती और प्रशिक्षण के और ज्यादा ठोस प्रयास करने की जरूरत थी, विशेषरूप से नेतृत्व और समन्वयक के स्तर पर।

इसी तरह विश्व के कई अन्य पारिस्थितिकीय कृषि आंदोलनों में, जिसमें किसान आंदोलन भी शामिल हैं, हो सकता है कि महिलाएं भारी संख्या में मौजूद हों पर अक्सर वे किसानों की पत्नी के रूप में छुप जाती हैं। वे नेतृत्व के स्तर तक खुद से नहीं पहुंच पातीं। या फिर केवल महिलाओं के लिए निर्धारित कोई गतिविधि या स्थान को हम प्रोत्साहित नहीं कर पाते जहां वे खुल कर अपनी बातें कर सकें, अपनी परेशानियों को बांट सकें या एकजुटता दिखा सकें और अपनी मर्जी के अनुसार अपने निर्णय ले सकें। कर्नाटक के 'जीरो–बजट प्राकृतिक खेती' आंदोलन में ऐसा ही देखा गया। इस आंदोलन को ''कर्नाटक राज्य रायत संघ'' नामक किसान आंदोलन ने प्रोत्साहित किया था।[33] परिस्थितिकीय खेती के प्रवर्तकों को यह सुनिश्चित करना होगा और इस बात की जिम्मेदारी लेनी होगी कि महिलाओं के पास उपयुक्त और पर्याप्त जगह हो जहां वे अपना विकास, नेतृत्व, शिक्षण, कमाई, तथा अन्य गतिविधियों के बारे में खुल कर बात कर सकें और अपनी मर्जी से निर्णय ले सकें।

---

[29] *(Hall and Mogyorody 2007)*
[30] *Mcmahon 2004*
[31] *Sumner and Llwelyn 2011*
[32] *Machin Sosa et al. 2010*
[33] *Khadse et al. 2017*

जेंडर उपयुक्त जगहों का निर्माण

कई बार महिलाओं के लिए वो जगह उपयुक्त नहीं होती जहां पुरुष भी आ सकें या मौजूद हों। ऐसे में वो जगह ज्यादा कारगर साबित होती है जो केवल महिलाओं के लिए हों। इन जगहों पर आसानी से महिलाओं के नेतृत्व और निर्णय–निर्धारण क्षमताओं का विकास हो सकता है। भारत में 'महिला सहकारी समितियां', 'स्वयं सहायता समूह' और अन्य समूह के रूप में ऐसे कई उदाहरण मौजूद हैं जो महिला सशक्तिकरण के लिए काफी फायदेमंद साबित हुए हैं। इनमें आमतौर पर एक ही सामाजिक पृष्ठभूमि की महिलाएं शामिल होती हैं। कई भारतीय सहकारी समितियों में ये भी देखा गया है कि पूरा परिवार ही सदस्य बन जाते हैं पर उनमें यह पाया गया है कि अक्सर परिवार के पुरुष सदस्य ही सारे निर्णय लेते हैं और महिलाओं को उनके बदले भी समिति का अतिरिक्त काम करना पड़ता है। इन मामले में किसान परिवार को एक इकाई के रूप में देखना सही नहीं होगा क्योंकि महिलाओं को अक्सर ग्रहणी के रूप में देखा जाता है जो बिना पैसों के काम करती है या उसके काम का कोई मोल नहीं होता।[34]

दूसरी तरफ अगर अलग–अलग सामाजिक पृष्ठभूमि (जैसे विभिन्न जाति, या जमींदार या भूमिहीन) की महिलाओं को एक ही समूह में डाल दिया जाए तो हो सकता है कि वे अपनी सामाजिक ऊंच–नीच के व्यवहार को समूह के अंदर भी पालन करना शुरू कर दें। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी महिलाएं एक समान नहीं होती हैं।[35] परिस्थितिकीय खेती को प्रोत्साहित करने वाले सारे प्रयासों को इस बात से सचेत रहना होगा कि महिलाओं के बीच भी शक्ति के संबंध मौजूद हैं और इसलिए सभी महिलाओं से समान प्रभाव की अपेक्षा रखना भी गलत होगा।

ऐसा जरूरी नहीं है कि सब समय ऐसा ही हो। किसी भी जेंडर संबंधित कार्य में हमेशा प्रयास करना चाहिए कि पुरुष और महिला दोनों, या पूरा परिवार और समुदाय शामिल हो। साथ ही इस बात के प्रति भी सतर्क रहना चाहिए कि कहीं सामाजिक असमानता फिर से न पनपने लगे। पारिस्थितिकीय कृषि के माध्यम से सामाजिक न्याय स्थापित करने के ठोस कदम उठाने चाहिए।

[34] *Agarwal 2014*
[35] *Mi Young Park and White 2014*

हम खुद से बदलाव की शुरुआत कर सकते हैं : समालोचनात्मक शिक्षा

''यह रोजाना के संघर्ष क्रांति की दिशा में बढ़ते कदम हैं'' (जॉर्ज लुकस)

जेंडर भेदभाव से निपटने के लिए किसी सामुहिक कार्य से पहले यह जरूरी है कि हम अपने रोजाना के निजी संघर्षों और अनुभव के साथ शुरुआत करें।[36] सामाजिक बदलाव का यह दृष्टिकोण समालोचनात्मक शिक्षा विज्ञान (critical pedagogy) से उभरा है जिसके अनुसार शिक्षा के लिए यह अनिवार्य है कि प्रत्येक व्यक्ति के खुद के अनुभवों की सबसे पहले छान–बीन करे। साथ ही गैरबराबरी/शोषण की एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखे, और इन्हें राजनीति धरातल पर रख कर देखे जिससे परिवर्तन लाया जा सके और मुक्ति को लक्ष्य बनाकर असमानता और अन्याय का विरोध किया जा सके। 'मुक्ति' का अर्थ है दमनकारी सामाजिक संबंधों से छुटकारा। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जहां हम अपने चैतन्य के स्तर पर इस बात को स्वीकार करते हैं कि हमारे साथ जो गैरबराबरी या शोषण हो रहा है वह 'नैसर्गिक', प्राकृतिक या सामान्य नहीं है और इसलिए हमें इसे स्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसका यह अर्थ है कि हमें अपनी वास्तविकता को समालोचनात्मक भाव से समझना चाहिए और अपनी निजी व सामुहिक कार्यवाही द्वारा उनका प्रतिरोध करना चाहिए। कई सामाजिक न्याय कार्यकर्ता इन तरीकों का इस्तेमाल करते हैं। उदाहरण के लिए, 'आनंदी' (ANANDI) ने निम्नलिखित कदमों का उल्लेख किया है[37] :

- गैरबराबरी से निपटने और सामाजिक संबंधों में बदलाव लाने के लिए यह ज़रूरी है कि शुरूआत हम अपने आप से करें।
- क्या आप भेदभाव के खिलाफ खड़े होना चाहते हैं ? अगर हां, तो क्यों और कैसे ?
- आप अपने परिवार में लड़कों और लड़कियों को किस प्रकार की सामाजिक शिक्षा देंगे ? क्या यह शिक्षा बराबरी, न्याय और अधिकार के सिद्धांतों पर आधारित होगी या इसमें पुराने रुढ़िवादी, भेदभाव और शोषण से भरे व्यवहार शामिल होंगे ?
- प्रतिभागियों से यह पूछा जाता है कि अगर उन्होंने अपने परिवार में कुछ भी अलग तरीके से किया है – अपने बेटों, बेटियों या बहू के साथ – जिससे हम यह जान सकें कि रुढ़िवादिता हमारे अंदर किस प्रकार भरी हुई है।
- या फिर प्रतिभागियों से यह पूछा जाता है कि क्या उनके गांव में किसी ने बेटों और बेटियों के प्रति अलग–अलग व्यवहार किया है।

[36] *Purima and Mamidipudi 2015*
[37] *ibid*

- प्रतिभागियों को इन कुरीतियों को खत्म करने के लिए एक कार्य योजना बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है जैसे परिवार के सभी वयस्कों को घर के काम में हाथ बंटाने का नियम बनाना इत्यादि।

कर्नाटक राज्य रायत संघ के किसानों द्वारा गठित 'अमृत भूमि', जो एक पारिस्थितिकीय कृषि विद्यालय है, ने हाल ही में 'जेंडर और कृषि' के ऊपर एक पाठशाला का आयोजन किया जिसमें प्रतिभागियों से ये कहा गया कि वे अपनी जिंदगी को ध्यान में रखते हुए यह बताएं कि घर में भेदभावपूर्ण संबंधों को बदलने के लिए क्या करने की जरूरत है। उनसे यह भी पूछा गया कि उन्हें महिलाओं और पुरुषों से किस प्रकार की अपेक्षाएं हैं और इन्हें कैसे बदला जा सकता है।[38]

ब्राजील के 'भूमिहीन जन आंदोलन', जिसे एमएसटी (MST) के नाम से भी जाना जाता है, के लिए भी नवउदारवाद के खिलाफ उनके संघर्ष के केंद्र में समालोचनात्मक शिक्षा (critical education) ही है। एमएसटी ने ऐसी शिक्षा के कई मॉडल तैयार किए हैं, जिसमें पारिस्थितिकीय कृषि और जेंडर बराबरी के साथ जोड़ा गया है जिसमें महिलाओं ने केंद्रीय भूमिका निभाई है। एमएसटी के शिक्षण कार्यक्रमों के केंद्र में परिस्थितिकीय कृषि और जेंडर आधारित शिक्षा के साथ–साथ समुदाय के अंदर जेंडर भेदभाव मिटाने के लिए महिला–पुरुष सशक्तिकरण होता है।[39]

[38] *Amri Bhoomi 2017*
[39] *Schwendler and Thompson 2017*

पारिस्थितिकीय कृषि का परिवार के स्तर पर प्रभाव

ला विया कमपेसिना (LVC)[40] एवं ANAP[41] द्वारा किए गए एक अध्ययन में यह पाया गया कि क्यूबा में पारंपरिक एकल–फसली (monoculture) व्यवस्था से हट कर अगर हम पारिस्थितिकीय कृषि की ओर जाते हैं, तो वह कृषि परिवारों के अंदर जेंडर भूमिका और शक्ति–संबंधों में बदलाव आ सकते है।[42] महिला कृषकों ने बताया कि पारंपरिक एकल–फसली (monoculture) व्यवस्था में फसलों के ऊपर पुरुषों का नियंत्रण रहता है, क्योंकि वे ट्रैक्टर चलाते हैं, खुद ही रोपाई करते हैं, रसायन डालते हैं, कटाई और फसल की बिक्री भी खुद करते हैं। ऐसे में सारा पैसा पुरुषों के हाथ में चला जाता है। इस व्यवस्था में पुरुष ही प्रधान होता है और वह अपने आप को राजा की तरह समझता है।[43] परन्तु खेती का विविधीकरण होते ही परिवार के सदस्यों के बीच आजीविका के अवसर और भूमिकाओं का भी विविधिकरण हो जाता है। पुरुष अभी भी पंक्तिदार फसलों का प्रबंधन करते हैं, परंतु पशुओं, केंचुआ खाद, औषधीय पौधों, इत्यादि के जुड़ने से इन क्षेत्रों में महिलाओं को भी आजीविका और निर्णय लेने के अवसर मिल जाते है। इस व्यवस्था में बुजुर्गों और किशोर सदस्यों की भी अपनी भूमिका होती है। कुछ पशुओं की देखभाल बच्चे करते हैं। परिवार के बुजुर्ग फलदार वृक्षों का ध्यान रख लेते हैं। इस प्रकार परिवार के अंदर शक्ति के संबंधों में बदलाव आता है और पितृसत्ता की कमर टूटने लगती है।

हमने देखा कि सभी महिलाओं के पास एक जैसी शक्ति या छूट नहीं होती है। हो सकता है कि उनके पास पशुपालन की जिम्मेदारी हो, पर दूध से हो रही आमदनी पर उनका कोई नियंत्रण न हो। कई बार परिवार ही पितृसत्ता के दमन का स्थान बन जाता है। ऊपर दिए गए उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि जेंडर बराबरी के मुद्दों को सामने रखने के लिए आंदोलन में महिलाओं की सहभागिता बहुत जरूरी है। ANAP के सभी सदस्यों को पारिस्थितिकीय कृषि कार्यक्रमों के जरिए जेंडर मामलों के प्रति जागरूक किया जाता है। शायद इसी वजह से महिलाओं को बेहतर आमदनी और अवसर प्राप्त हो सके हैं।

[40] *La via Campesina (LVC)* यह स्पेनिश भाशा में है जिसका अर्थ 'किसानों का रास्ता' होता है।
[41] *Asociacion Nacional de Agricultores Pequenos (ANAP).* यह नाम स्पेनिश भाषा में है, जिसका अर्थ 'छोटे किसानों का राष्ट्रीय संगठन' होता है।
[42] *Rosset et al 2011*
[43] *Machin Sosa et al. 2013*

पारिस्थितिकीय कृषि/जैविक खेती कैसे महिलाओं के लिए बेहतर अवसर प्रदान करते हैं[44]

1. ***यह सार्थक कार्य का सृजन करता है :*** पारिस्थितिकीय कृषि में कई प्रकार के कार्य, विशेष कौशल, और विशिष्ट ज्ञान शामिल हैं। इसमें महिलाएं परिवार के आमदनी में योगदान देने के लिए कई भूमिकाएं निभा सकती हैं। पारंपरिक एकल–फसलीय (monoculture) रसायनिक खेती के मुकाबले पारिस्थितिकीय कृषि में पैसे कमाने और निर्णय लेने के लिए कई भूमिकाएं हो सकती हैं जिनकी मदद से परिवार में पितृसत्ता का असर धीरे–धीरे कम होता जाता है।

2. ***शिक्षण, साझाकरण और सामाजिक एकता पारिस्थितिकीय कृषि के मूल–तत्व हैं :*** एक दूसरे से सीखना और साझा करना पारिस्थितिकीय कृषि में काफी महत्वपूर्ण है। इससे मिलने–जुलने का अवसर प्राप्त होता है और सामाजिक एकता सुदृढ़ होती है। ऐसी जगहों पर महिलाएं खुल कर जेंडर बराबरी, सामाजिक एकता और एकजुटता जैसे मुद्दों पर संगठित हो सकती हैं। दूसरी तरफ, पारिस्थितिकीय कृषि सृजनात्मकता को बढ़ावा देता है और यह खेती के लिए न सिर्फ फायदेमंद होता है बल्कि

हाथ हिलाते हुए महिला किसान (फोटो : रुचा चिटनिस)

[44] *IFOAM 2007, Mpofu 2016*

महिलाओं के सृजनात्मक कौशल और सामूहिक कार्य को निखारता है।

3. ***यह आर्थिक अवसर प्रदान करता है :*** पारिस्थितिकीय कृषि में शुरुआती खर्च और लागत कम होती है। यह सहज और ज्यादा असरदार होता है। समय के साथ इसकी उत्पादकता बढ़ती है। खेती को यह कम जोखिम भरा बनाता है और यह महिलाओं के लिए भी किफायती और सुगम होता है। दूसरी तरफ, घरेलू पोषण के साथ–साथ पारिस्थितिकीय कृषि के जरिए हम उच्च–मूल्य वाले उत्पाद का बाजार में बेचकर ज्यादा आमदनी कमा सकते हैं। उदाहरण के लिए आजकल बाजार में जैविक और प्रसंस्कृत उत्पादों का काफी मांग है, जिससे महिलाओं के लिए नए अवसर खुल रहे हैं। पारिस्थितिकीय कृषि पशुपालन के ऊपर भी जोर डालता है और उसे खेती के साथ जोड़ कर देखता है। पशुपालन महिलाओं के लिए काफी लाभकर साबित हुआ है क्योंकि इसकी मदद से पोषण और भोजन के अलावा अतिरिक्त आमदनी भी हो जाती है।

4. ***यह स्वास्थ्य के लिए अच्छा है :*** कृत्रिम रसायनों का इस्तेमाल नहीं होने से उपभोक्ताओं और किसानों के स्वास्थ्य में सुधार देखा गया है। कीटनाशकों इत्यादि में जहरीले रसायनों के इस्तेमाल से कैंसर जैसी कई बीमारियां हो सकती हैं। इसके अलावा फसल, फल और पशुपालन में विविधता के कारण परिवार के पोषण की स्थिति में सुधार आता है।

5. ***यह जैव–विविधता और पारंपरिक ज्ञान को बढ़ावा देता है :*** पारिस्थितिकीय कृषि मूल रूप से खेत की जैव–विविधता को सुधारने पर आधारित है। यह स्थानीय बीज और फसलों में भिन्नता को प्रोत्साहित करता है जो स्थानीय जलवायु के अनुकूल हो। यह किसानों के पारंपरिक ज्ञान का सम्मान करता है। इसमें महिलाओं की ज्यादा भूमिका होती है जिनके पास बीजों के संरक्षण का पारंपरिक ज्ञान मौजूद है।

कुछ सफल अनुभव (केस स्टडी)

(1) तमिलनाडु महिला समूह (Tamil Nadu Women's Collective)

''अगर कोई अपने खेत में रसायनों का इस्तेमाल करता है, तो उस खेत की मिट्टी को पुनर्जीवित करना संभव है, पर अगर एक बार हम जीएमओ (GMO) बीज का इस्तेमाल करने लगे तो फिर पारंपरिक बीजों का वापस लौटना संभव नहीं''

– शीलू फ्रांसिस

'तमिलनाडु महिला समूह' के सदस्यों की संख्या करीब एक लाख है जो समाज से बेदखल किए हुए तबकों से हैं जिनमें विधवा, भूमिहीन, और दलित महिलाएं शामिल हैं। इस समूह का गठन वर्ष 1994 में हुआ था। यहां महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए कई प्रयास किए गए हैं। इनमें पारिस्थितिकीय खेती मुख्य है जिन्हें वे 'प्राकृतिक खेती' या 'शून्य–बजट प्राकृतिक खेती' (zero budget natural farming) भी कहते हैं जिसकी शुरूआत सुभाष पालेकर ने की थी। गांव के स्तर पर संगठित महिलाओं के समूह को 'संगम' कहा जाता है। 'संगम' द्वारा ही अधिकतर कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं।

यहां की महिलाएं पारिस्थितिकीय कृषि को अपनी आत्मनिर्भरता और खाद्य संप्रभुता को बढ़ाने के लिए प्रमुख माध्यम के रूप में देखती हैं। ऐसा करते हुए चार चीजों को केंद्र में रखा जाता है – (1) भूमि, (2) पारंपरिक बीच, (3) पशु और (4) पानी। हालांकि समूह के सभी सदस्यों के पास अपनी भूमि नहीं है, न ही वे बटाई पर जमीन लेते हैं, पर फिर भी उन्हें घर के आंगन में जैविक खेती करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। यह महिलाएं सघन रूप से जल संरक्षण का कार्य करती हैं और ज़ीरो बजट प्राकृतिक खेती के साथ–साथ एस. आर.आई (SRI)[45] जैसे तरीकों का भी इस्तेमाल करती हैं।

तमिलनाडु महिला समूह के सदस्य प्राकृतिक खेती पद्धति का इस्तेमाल दोनों ही तरह की जमीनों पर करते हैं – वर्षा आधारित और सिंचित। प्रशिक्षण के लिए इनके पास दो प्रदर्शन खेत हैं। एक सिंचित है और दूसरा जो अर्ध–शुष्क क्षेत्र में आता है, जहां सिंचाई उपलब्ध नहीं है। यह दोनों ही खेत प्रशिक्षण के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं, जहां नए सदस्य 'जीरो–बजट प्राकृतिक खेती' के बारे में सीखते हैं। इसके अलावा महिला समूह प्रशिक्षण कार्यक्रमों का भी आयोजन करता है जिसमें पारिस्थितिकीय कृषि, पोषण और मिट्टी के स्वास्थ्य के बारे में महिला किसान द्वारा ही दूसरी महिला किसानों को प्रशिक्षण दिया जाता है। किसानों को जैविक कीटनाशकों और जैविक खाद के ऊपर प्रशिक्षण दिया जाता है। इन प्रशिक्षणों में वे सीखते हैं कि स्थानीय सामग्रियों जैसे गाय का गोबर, गौमूत्र और दूध का इस्तेमाल करके हम खेती के खर्चों को कैसे कम कर सकते हैं और बाहरी सामग्रियों पर अपनी निर्भरता कम कर सकते हैं।

[45] सिस्टम ऑफ राइस इंटेंसिफिकेशन (System of Rice Intensification): यह पारिस्थितिकीय कृषि का एक तरीका है जिसमें धान की खेती में पौध, मिट्टी, पानी और पोषण के प्रबंधन में बदलाव लाकर उत्पादन को बढ़ाया जाता है। एस.आर.आई की शुरूआत मैडागास्कर में 1980 में हुई थी। यह पौध की संख्या को महत्वपूर्ण रूप से कम करने के सिद्धांत पर आधारित है।

इन समूहों का एक मुख्य विषय है – महिलाओं के खिलाफ हिंसा। हिंसा कई स्तर पर होती है, जैसे घर में, कार्य क्षेत्र में, जाति के कारण, धर्मों के बीच, और सांप्रदायिक तनाव, या फिर पुलिस और सरकारी अधिकारियों द्वारा। तमिलनाडु महिला समूह के सदस्य हिंसा से पीड़ित लोगों को परामर्श सेवा प्रदान करने में प्रशिक्षित हैं। घरेलू हिंसा या यौन उत्पीड़न की शिकार महिलाओं को वे कानूनी मदद भी प्रदान करते हैं। इनके अनुसार घरेलू हिंसा या परिवार के स्तर पर भेदभाव या असमानता से निपटने के लिए जेंडर के ऊपर बातचीत करना व उसका विश्लेषण बहुत जरूरी है।

तमिलनाडु महिला समूह का सामूहिक खेती का मॉडल उनकी बड़ी उपलब्धियों में से एक है। इस समूह के करीब एक लाख महिला सदस्यों में से केवल 1 प्रतिशत के पास खुद की जमीन होगी। अधिकांश महिलाएं पट्टे पर जमीन लेती हैं और उनमें सामूहिक रूप से भोजन और मोटे अनाज का उत्पादन करती हैं।

प्रशिक्षण में शामिल होने वाले किसान प्रदर्शन खेतों में सामूहिक खेती, पारिस्थितिकीय खेती, बीज बैंक, इत्यादि के उदाहरण साफ दिखते हैं। ये महिलाओं के समूह को नए संयुक्त खेती की शुरूआत करने में भी मदद करते हैं। महिलाओं को समूह के रूप में संगठित करके खेती के लिए आवश्यक संसाधनों और भूमि की कमी को दूर की जाती है। समूह की महिलाएं आपस में अपनी जमीन को बांट कर संयुक्त खेती की मदद से जमीन की कमी को दूर किया जाता है और अपने परिवार को भोजन उपलब्ध कराते हैं। महिलाओं द्वारा बचत भी सामूहिक रूप से ही की जाती है। इससे ऋण प्राप्ती की समस्या भी हल हो जाती है।

परिस्थितिकीय खेती के इस मॉडल के केंद्र में हमेशा महिलाओं का सशक्तिकरण रहता है जहां महिलाएं सामूहिक रूप से काम करना, पारिस्थितिकीय कृषि की नई तकनीकें, संसाधनों को जमा करना, और अपने अधिकारों के बारे में सीखती हैं।

केवल महिलाओं के लिए निर्धारित जगहों से उन्हें प्रेरणा मिलती है। वे वहां खुल कर अपने विचार व्यक्त कर सकती हैं और अपने नेतृत्व का निर्माण कर सकती हैं। महिलाओं का यह नेटवर्क उनके लिए सुरक्षा चक्र का काम करता है। न सिर्फ यह इन्हें आर्थिक और सामाजिक सहायता प्रदान करता है बल्कि भोजन की न्यूनतम जरूरतों को भी पूरी करता है। बच्चे अपनी बहनों और मां को देखते हुए बड़े होते है और इन महिलाओं को अपना आदर्श मानते हैं। युवतियों इन महिलाओं से प्रेरणा प्राप्त करती हैं, जो जेंडर भेदभाव का जोरदार प्रतिरोध करती हैं।

पारिस्थितिकीय खेती की शुरुआत से पहले, अधिकतर महिलाओं की आमदनी का एक बड़ा हिस्सा दवाइयों और स्वास्थ्य समस्याओं पर खर्च हो जाता था। इसीलिए शीलू फ्रांसिस और उनके दोस्तों ने यह तय किया कि वे वापस प्राकृतिक और पारंपरिक खेती की ओर जाएंगे।

महिलाओं को मोटे अनाज (जैसे ज्वार, बाजरा इत्यादि) उगाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इनमें पोषक तत्वों की मात्रा काफी अधिक होती है। ये स्थानीय संदर्भ और संस्कृति के अनुकूल भी होते हैं। तमिलनाडु महिला समूह के अनुभवों के अनुसार स्थानीय बीजों – जैसे ज्वार, बाजरा, (मोटे अनाज) में

जलवायु के उतार–चढ़ाव से निपटने की भारी क्षमता होती है। मोटे अनाज इस क्षेत्र का पारंपरिक भोजन हुआ करता था। परंतु हरित क्रांति के बाद से मिश्रित खेती के बदले धान की खेती शुरू हो गई। मजेदार बात तो यह है कि पानी के अभाव के कारण तमिलनाडु के अधिकतर जिलों में धान की खेती करना मुश्किल है। इसीलिए तमिलनाडु महिला समूह मोटे अनाज की खेती प्रोत्साहित कर रही है जिससे महिला किसानों को पानी के अभाव की समस्या से न जूझना पड़े और साथ ही वे कुपोषण से भी बच जाएं।

मोटे अनाज को दलित परंपरा की स्थापना और जातिगत भेदभाव के खिलाफ संघर्ष के रूप में भी देखा जाता है। शीलू फ्रांसिस के अनुसार, मोटे अनाज को गरीबों या दलित समुदाय का भोजन के रूप में देखा जाता है।[46]

> *यह गरीब लोगों का भोजन है। मंदिर में प्रसाद के रूप में चावल चढ़ाया जाता है। चावल एक धार्मिक भोजन है, जो ईश्वर को चढ़ाया जाता है। धान – सफ़ेद और चमकता चावल – को ईश्वर के भोजन के रूप में देखा जाता है। जातिवादी विचारधारा ने मोटे अनाज उत्पादन और सेवन को हाशिए पर धकेल दिया है।*

समूह की कई महिलाएं स्थानीय चुनावों में भी खड़ी हुई हैं और जीती भी हैं। इस प्रकार वे स्थानीय शासन में महिलाओं के नेतृत्व को प्रोत्साहित कर रहे हैं। इन प्रयासों के जरिए महिला समूह ने न सिर्फ पारिस्थितिकीय खेती को प्रोत्साहित किया है बल्कि महिलाओं की घरेलू और आर्थिक स्थिति को भी सुधारने का काम किया है। भूमि तक महिलाओं की पहुंच को बेहतर बनाया है। और साथ ही उन्हें जेंडर समानता और नेतृत्व विकास के लिए प्रशिक्षित भी किया है।

(2) ग्रामीण महिला उत्थान समाज (Rural Women Upliftment Society), मणिपुर[47]

मणिपुर राज्य में यह एक समुदाय–आधारित–संगठन है। इस क्षेत्र में जलवायु की अस्थिरता, संसाधनों तथा अवसरों का अभाव जैसी सामान्य समस्याओं के साथ–साथ यहां के किसानों को सशस्त्र उग्रवाद और सैन्य बलों के बीच हिंसक मुठभेड़ का भी सामना करना पड़ता है। कई महिलाओं के पति इस हिंसा के शिकार हो गए हैं। इन महिलाओं को 'गन–विडो' अर्थात् 'बंदूक–विधवा' के रूप में जाना जाता है। इनकी देखभाल करने वाला कोई भी नहीं है और कई बार तो इन्हें समाज से भी बहिष्कृत कर दिया जाता है। मणिपुर में विवादास्पद ''आर्म्ड फोर्सेज स्पेशल पावर्स एक्ट (AFSPA)'' के कारण सैन्य बलों के पास असाधारण विशेष अधिकार होते हैं, जिससे इन्हें किसी को भी मारने, यंत्रणा देने, अपहरण करने, या छानबीन करने की पूरी छूट होती है और उनपर कोई जवाबदेही नहीं होती है। इस कानून को सरकार विरोधी किसी भी गतिविधि को कुचलने के लिए मणिपुर में लागू किया गया है। कई मणिपुरी महिलाएं इसके उत्पीड़न का शिकार हुई हैं। उन्हें बलात्कार या यंत्रणा का सामना करना पड़ा है। इरोम शर्मिला को कौन नहीं जानता जिन्होंने इस कानून के विरोध 16 साल तक भूख हड़ताल पर रहीं।

[46] *Quinn-Thibodeau 2015*
[47] *Chitnis 2013, 2017, Rural Women Upliftment Society 2017*

दूसरी तरफ, मणिपुर में खुलेआम पर्यावरण का नाश हो रहा है – खदानों, बड़े–बड़े बांधों और वनों की कटाई के कारण। इस क्षेत्र की एक और बड़ी समस्या है – जलवायु परिवर्तन। मौसम की अनिश्चितता बढ़ने के कारण खेती करना दिनोदिन मुश्किल होता जा रहा है।

इस परिप्रेक्ष्य में 'ग्रामीण महिला उत्थान समिति' समग्र रूप से स्थानीय महिलाओं, विशेष रूप से बंदूक विधवाओं, महिलाएं जो HIV से ग्रस्त हैं, बुजुर्ग महिलाओं के लिए कार्य कर रहा है, जिसमें पारिस्थितिकी खेती, महिला समूहों का गठन, आजीविका और आमदनी में वृद्धि, स्थानीय प्रशासन और नेतृत्व में सहभागिता, घरेलू हिंसा के खिलाफ संघर्ष, इत्यादि शामिल हैं। यह संस्था गरीबी रेखा से नीचे के 1000 किसानों और उनके परिवारों को नियमित रूप से कौशल वृद्धि और प्रशिक्षण के जरिए सहायता प्रदान कर रही है। इन्हें पारिस्थितिकीय कृषि, एस.आर.आई (SRI) और जलवायु परिवर्तन के मुद्दों पर प्रशिक्षण दिया जाता है। इस संस्था ने महिलाओं को समूहों (जैसे स्वयं सहायता समूह) के रूप में संगठित किया गया है जिससे उनकी आजीविका के मुद्दों को सामूहिक रूप से संबोधित किया जा सके। गांव के स्तर पर उन्होंने सामुदायिक खाद्य बैंक और बीज बैंक का गठन किया है, जहां से जरूरत के समय भोजन और बीज प्राप्त किया जा सके। इनका प्रबंधन किसान क्लब या महिला स्वयं सहायता समूह द्वारा किया जाता है।

ऐसे जमीनी कार्यों के अलावा, यह संस्था राजनीतिक अभियानों में भी सक्रिय है। उदाहरण के रूप में, इन्होंने यह महसूस किया है कि यहां के रीति–रिवाज और प्रथागत कानून महिलाओं के खिलाफ भेदभावपूर्ण हैं। अब ये एक मजबूत जेंडर कानून बनाने की मांग कर रहे हैं जिससे निर्णय–निर्धारण प्रक्रिया में, स्थानीय और राजकीय शासन में, और सरकारी या राजनीतिक संस्थानों में, जिसमें धार्मिक इकाइयां भी शामिल है – में महिलाओं की बराबर भागीदारी सुनिश्चित किया जा सके।

> *महिलाएं धीरे–धीरे इस बात को महसूस कर रही हैं कि उनके लंबे समय से चले आ रहे रीति–रिवाज भेदभावपूर्ण है। इनमें सुधार की जरूरत है, जिससे महिलाओं का संपत्ति, राजनीतिक भागीदारी तथा अन्य संसाधनों के ऊपर बराबर का अधिकार हो।*
>
> – मेरी बेथ सनाटे, नेता, ग्रामीण महिला उत्थान समाज

कुछ दिनों पहले भारतीय खुफिया विभाग और सरकार ने इनके ऊपर हमला बोल दिया क्योंकि वे पूर्वोत्तर राज्य में खदान करने वाली कंपनी के खिलाफ हो रहे अभियान का हिस्सा थे। सरकार इन गतिविधियों को राष्ट्र विरोधी मानती है। इसलिए इनके ऊपर विदेशी निधि कानून की उल्लंघन का मुकदमा चलाया जा रहा है।

(3) डेक्कन डेवलपमेंट सोसाइटी (Deccan Development Society)

डेक्कन डेवलपमेंट सोसाइटी ने दलित महिलाओं के उत्थान और मोटे अनाज के ऊपर उल्लेखनीय काम किया है। यह संस्था महिलाओं के अधिकार, पारिस्थितिकीय कृषि और खाद्य संप्रभुता को एक साथ जोड़कर समग्र रूप से कार्य कर रही है।

डेक्कन डेवलपमेंट सोसाइटी की शुरूआत आंध्र प्रदेश के मेढक जिले के सबसे गरीब परिवारों के पोषण और भोजन की जरूरतों को लेकर हुई थी। यह संस्था समाज के हाशिये पर रहने वाले दलित महिलाओं और दलित परिवारों को ब्याज–रहित ऋण उपलब्ध कराती है। उन्होंने महिलाओं को सशक्त किया और उन्हें पारिस्थितिकी पद्धति से पोषणयुक्त भोजन उगाने में मदद दी। इन महिलाओं के जरिये यह संस्था पूरे समुदाय की स्थिति को सुधारना चाहती है।

डेक्कन डेवलपमेंट सोसाइटी की महिलाएं ''संगम ऑर्गेनिक्स'' के नाम से अपने जैविक उत्पादों का प्रदर्शन करते हुए

सबसे पहले महिलाओं को 'संगम' के रूप में संगठित किया जाता है। ये 'संगम' फिर भूमि आधारित खेती के कार्यक्रमों को लागू करते हैं। इन कार्यक्रमों में सामूहिक रूप से जमीन पट्टे पर लेना, सामूदायिक अनाज बैंक, बीज बैंक, इत्यादि शामिल हैं। यह संस्था ऋण उपलब्ध कराकर 'संगम' की महिलाओं को जमीन पट्टे पर लेने और सामूहिक खेती करने में मदद करती है। इन्हें खेती के कार्यों के लिए थोड़ा अनुदान भी देती है। अगर नगद न हो तो इस अनुदान और ऋण की राशि वे अनाज के रूप में या जरूरत पड़ने पर श्रम के रूप में अदा कर सकते हैं। यह अनाज सीधे सामूहिक अनाज बैंक में चला जाता है।

सामूहिक अनाज बैंक सरकारी पीडीएस सिस्टम का एक विकल्प है। इसके जरिए गरीब परिवारों को सब्सिडी में अनाज बांटा जाता है। सरकारी पीडीएस से अलग समुदायिक अनाज बैंक पूरी तरह से विकेंद्रीकृत होते हैं और इनका प्रबंधन स्थानीय रूप से किया जाता है। इनमें विविध प्रकार के पोषणयुक्त खाद्य बांटा जाता है। सरकारी व्यवस्था से बिलकुल अलग जहां केवल गेहूं और चावल ही दिया जाता है। इकट्ठा किये हुए अनाज को सब्सिडी दर पर स्थानीय सदस्यों को बेचा जाता है। अनाज किसे बेचा जाएगा इसका चुनाव समुदाय के सदस्य करते हैं और चुनाव का आधार यह होता है कि किसे इस अनाज की सबसे ज्यादा जरूरत है। इसके अलावा यह पारिस्थितिकीय कृषि पर आधारित है और परती जमीन को तैयार करके समुदाय के सदस्यों को आजीविका प्रदान करता है।

इन कार्यक्रमों की मदद से इस संस्था ने महिलाओं की सबसे बड़ी समस्या – जमीन और ऋण के अभाव – से उभरने में कामयाब रही है। पारंपरिक रूप से दलित समुदाय के हाथ हमेशा खराब जमीन ही लगती थी। 'संगम' से प्राप्त ब्याज–मुक्त ऋण की मदद से दलित परिवार अपनी खराब जमीन को भी पुनर्जीवित कर पाने में सक्षम हुए हैं और उसमें खेती कर रहे हैं।

'संगम' की महिलाओं ने एक ऊंची जाति वाले जमींदारों के साथ एक असामान्य संबंध बना लिया है। ज्ञात रहे ये वो तबका है जो पारंपरिक रूप से दलित समुदाय के खिलाफ वर्ग और जाति संघर्ष में शामिल रहा है। परंतु आज अधिकतर जमीदार 'संगम' के सदस्यों को विश्वसनीय मानने लगे हैं और वे अपनी जमीन इन्हें ही पट्टे पर देना चाहते हैं ताकि उनकी खाली पड़ी जमीन का इस्तेमाल हो सके।[48]

'संगम' के कारण महिला सदस्यों की जिंदगी में नाटकीय बदलाव आए हैं। इनमें से कोई भी महिला ऐसी जमीन कभी नहीं खरीद पाती। इनके लिए उत्पादन कला सीखना असम्भव था। महिलाओं ने बताया कि समूह के कारण परिवार की खुराक, स्वास्थ्य देखभाल, बच्चों की शिक्षा, समुदाय में सम्मान, और पति–पत्नी के बीच संबंध, में काफी सुधार आया है। जब भी अतिरिक्त काम करने की जरूरत पड़ती है, महिलाएं अपनी मजदूरी के लिए बेहतर मोलभाव कर पाती हैं, क्योंकि उनके पास पहले से ही एक आजीविका का साधन मौजूद है। बंधक मजदूर और जातिगत भेदभाव में कमी आई है। महिलाओं के अनुसार स्थानीय सरकारी अधिकारी उन्हें पुरुषों से ज्यादा प्राथमिकता देते हैं। घरेलू हिंसा में भी कमी आई है और अपनी कमाई के ऊपर उनका खुद का नियंत्रण होता है।

(4) भूमिहीन महिला किसानों के साथ कुडुम्बश्री का काम

घर में भोजन करते समय मैंने अपने पति को बताया कि जो चावल आप खा रहे हैं वह मेरे परिश्रम का फल है। मेरे अंदर यह आत्मविश्वास कुडुम्बश्री की वजह से आया है जिससे मैं अपने पति के सामने अपनी बात रख सकूं। आज मुझे सामूहिक खेती और सब्जी उत्पादन करने में खुद पर पूरा भरोसा है।

— उषा, कुडुम्बश्री[49]

केरल में भूमिहीन या बहुत छोटी जोत वाले किसान परिवारों के सामने एक गंभीर समस्या यह है कि उनके पास आजीविका का कोई मुख्य साधन नहीं है। मजदूरी मौसम के हिसाब से मिलती है। इनकी जमीन इतनी छोटी है कि गुजारा नहीं हो पाता। कई जमीदार, जिनसे इन्हें मजदूरी का काम मिल जाता था अब कृषि का कार्य छोड़ रहे हैं। या तो वे अपनी जमीन बेच रहे हैं या उन्हें खाली

स्कूल के भोजन के लिए एक पोशक मिश्रण तैयार करते हुए स्थानीय आंगनवाड़ी की महिलाएं। इस सेंटर को पूरी तरह से कुडुम्बश्री की महिलाएं ही चलाती हैं (फोटो : दिव्या जैन)

[48] *Khadse 2017*
[49] *Anand and Maskara n.d.*

छोड़ देते हैं क्योंकि उन्हें कृषि से कोई लाभ नहीं हो रहा है। इससे काम के अवसर घटते जा रहे हैं। अंततः वे जमीदारों और उनके निर्णय पर अश्रित हैं। वर्ष 1980 से 2007 के बीच केरल ने अपने करीब 500,000 हेक्टेयर धान के खेत गंवा दिए। इसके सीधा नुकसान इन भूमिहीन और छोटे किसानों के ऊपर पड़ा।[50]

इनमें से कई महिला मजदूर ऐसी हैं जिन्हें कुडुम्बश्री से सामूहिक पारिस्थितिकीय खेती करने के लिए सहायता मिली। अब इनके पास जमीन, आजीविका सुरक्षा और खाद्य स्वायत्ता है। कुडुम्बश्री ने इन्हें मजदूर से किसान बना दिया। 'कुडुम्बश्री' का मतलब होता है – परिवार कि समृद्धि। यह गरीबी उन्मूलन का एक सरकारी कार्यक्रम है, जिसकी शुरुआत 1998 में केरल सरकार द्वारा की गई थी। इसका लक्ष्य महिला सशक्तिकरण था। आज इसका दावा है कि 40,000 हेक्टेयर भूमि के ऊपर 16,000 से भी ज्यादा भूमिहीन महिलाएं सामूहिक खेती कर रही हैं।

यह कार्यक्रम महिलाओं के सामुदायिक संगठनों के जरिये काम करता है। इन्हें पंचायत की भी सहभागिता है। इस कार्यक्रम का एक व्यापक ढांचा है और इसके तहत कई प्रकार की गतिविधियां – जैसे मिक्रोफाइनांस, माइक्रो हाउसिंग और अति लघु उद्योग, इत्यादि हैं। इनके अलावा सामूहिक पारिस्थितिकीय खेती भी इस कार्यक्रम का एक प्रमुख हिस्सा है।

सामूहिक खेती के अंतर्गत उपलब्ध भूमि की पहचान, लाभार्थियों का चयन, समूह गठन, उनका प्रशिक्षण, सामग्रियों का वितरण और प्रोत्साहन राशि (incentive) का वितरण, जैसी गतिविधियां शामिल हैं। चयनित भूमि खाली पड़ी सरकारी जमीन हो सकती है या कोई निजी जमीन हो सकती है जिसे खेती के लिए लिया गया हो। ज्यादातर खेती कीटनाशक के बिना की जाती है। सदस्यों द्वारा जीरो बजट प्राकृतिक खेती और अन्य पारिस्थितिकी तकनीकों को प्रोत्साहित करने के लिए कुछ नए कार्यक्रम भी लिए गए हैं।[51]

कुडुम्बश्री की सफलता का मुख्य कारण यह है कि वहां पहले से ही एक सामाजिक संगठन मौजूद था। राज्य स्तर से लेकर पड़ोसी स्तर तक कुडुम्बश्री का तीन स्तरीय ढांचा है। 10–20 की संख्या में महिलाओं को 'पड़ोसी समूह' (neighbourhood group) के रूप में संगठित किया जाता है। ये महिलाएं बचत और ऋण जैसी गतिविधियों में पहले से ही शामिल होती हैं जो पारिस्थितिकीय कृषि के लिए अनुकूल है। जिला स्तर पर 'सामुदायिक विकास समिति' (Community Development Society) का काम यह होता है कि वो पंचायत से बातचीत करके खेती योग्य खाली पड़ी जमीन को सामूहिक खेती के लिए उपलब्ध कराए।

डेक्कन डेवलपमेंट सोसाइटी की तरह कुडुम्बश्री का भी लक्ष्य खाली जमीन पर था, चाहे वह सरकारी हो या निजी। यह जेंडर और पारिस्थितिकीय कृषि की सफलता का एक बड़ा कारण है। ग्राम पंचायत और 'सामुदायिक विकास समिति' महिलाओं को भूमि मालिकों के पास से जमीन पट्टे पर लेने में मदद करते हैं। विवादों के समाधान में भी उनकी अहम भूमिका रहती है।

खाद्य फसलों को उगाने के लिए राज्य सरकार की सहायता से कुडुम्बश्री ने महिलाओं को प्रोत्साहन राशि

---

[50] *Menon 2016*

[51] *Hindu 2012*

(incentive) भी बांटा। नगद फसल के लिए ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। जैविक खेती/पारिस्थितिकी खेती करने वाले समूहों के लिए अतिरिक्त प्रोत्साहन राशि (incentive) का प्रावधान है।

कुडुम्बश्री के तहत केवल सामूहिक गतिविधियों को ही बढ़ावा दिया जाता है, निजी खेती को नहीं। ऐसे सामूहिक गतिविधियां शिक्षण और सहकार्यता (collaboration) के लिए सहायक सिद्ध होती हैं। कई परिवार एक साथ जब मिलजुल कर सामूहिक रूप से अलग–अलग फसलें उगाते हैं, आपस में काम का बंटवारा करते हैं, और एक दूसरे की सहायता करते हैं तो इससे एक साथ कई परिवारों को फायदा पहुंचता है।

महिलाओं को सामूहिक खेती में मदद करने के लिए कुडुम्बश्री बैंकों और सरकार के साथ मिलकर सस्ते कर्ज और सब्सिडी के लिए विशेष नीतियां बनाने का भी प्रयास कर रहा है।

पारिस्थितिकी कृषि और अन्य कृषि तकनीकों में माहिर महिलाओं को ''मास्टर किसान'' (master farmer) की भूमिका में रखा जाता है। वे अन्य किसानों को प्रशिक्षण देने का काम करती हैं और समुदाय को नेतृत्व प्रदान करती हैं। अन्य महिला श्रमिकों के लिए ये प्रेरणा का स्त्रोत होती हैं जो उनकी तरह आत्मनिर्भर और कामयाब बनना चाहती हैं।

कुडुम्बश्री की सामूहिक पारिस्थितिकीय कृषि के कई सकारात्मक प्रभाव रहे हैं। महिलाएं अब मौसमी मजदूरी और जमींदार के ऊपर आश्रित नहीं हैं। वे श्रमिक से एक आत्मनिर्भर किसान और प्रबंधक बन गई हैं। इससे उनके आत्मविश्वास और आत्मसम्मान में वृद्धि हुई है। कुडुम्बश्री के जरिए महिलाओं ने सामूहिक रूप से काम करना और एकजुटता के साथ बड़े निर्णय लेना सीख लिया है। इनके खाद्य स्वायत्तता और आमदनी में सुधार आया है। कई महिलाओं ने तो यह भी कहा है कि अब परिवार के अंदर उनकी स्थिति सुधरी है। कुछ महिलाओं ने पैसे बचा कर अपने लिए जमीन भी खरीदी है।

कुडुम्बश्री की महिलाओं द्वारा भारू की गई आटा चक्की जिसका पूरा प्रबंधन महिलाएं स्वयं करती हैं। (फोटो : दिव्या जैन)

References

Agarwal, B. 2010. Rethinking Agricultural Production Collectivities: *The case for a group approach to energize agriculture and empower poor farmers | EABER. No. 305*.

Agarwal, B. 2014. The Journal of Peasant Studies Food sovereignty, food security and democratic choice: critical contradictions, difficult conciliations. *The Journal of Peasant Studies, 41(6), 1247–1268.*

Amrita Bhoomi. 2017. What do love letters have to do with farming? | Amritabhoomi [online]. *amritabhoomi.org*. Available from: https://amritabhoomi.org/what-do-love-letters-have-to-do-with-farming/ [Accessed 15 May 2017].

Anand, S. and M. Maskara. n.d. Women Farmers: The Pillars of Food Security in Kerala.

Bearak, M. 2016. Why terms like 'transgender' don't work for India's 'third-gender' communities - *The Washington Post* [online]. The Washington Post. Available from: https://www.washingtonpost.com/news/worldviews/wp/2016/04/23/why-terms-like-transgender-dont-work-for-indias-third-gender-communities/?utm_term=.9c5790db747e [Accessed 14 May 2017].

De Beauvoir, S. 1953. The Second Sex. *Existentialism*.

Boserup, E. 1970. *Woman's role in economic development*. Earthscan Publications.

Chitnis, R. 2013. Women's Earth Alliance: Recognizing Women's Leadership to Mitigate Conflict & Climate Change [online]. Womens Earth Alliance. Available from: http://womensearthalliance.blogspot.in/2013/12/realizing-womens-rights-in-face-of.html [Accessed 15 May 2017].

Chitnis, R. 2017. Stewards of Food Culture and Biodiversity: Voices from the Northeast | Vikalp Sangam [online]. Vikalpsangam.org. Available from: http://vikalpsangam.org/article/stewards-of-food-culture-and-biodiversity-voices-from-the-northeast/#.WRi8LRgrzsk [Accessed 15 May 2017].

Comanne, D. 2010. How Patriarchy and Capitalism Combine to Aggravate the Oppression of Women [online]. cadtm.org. Available from: http://www.cadtm.org/How-Patriarchy-and-Capitalism#nb2 [Accessed 9 Mar 2017].

Das, L. 2015. Work Participation of Women in Agriculture in Odisha. IOSR Journal Of Humanities And Social Science Ver. III, 20(7), 66–78.

Grassroots. 2014. Women farmers leading the way - The Tamil Nadu women's collective raises crops

awareness in India - India | ReliefWeb [online]. ReliefWeb. Available from: http://reliefweb.int/report/india/women-farmers-leading-way-tamil-nadu-womens-collective-raises-crops-awareness-india [Accessed 15 May 2017].

Gura, S. 2013. Agropoly – A handful of corporations control world food production.

Hall, A. and V. Mogyorody. 2007. Organic Farming, Gender, and the Labor Process. Rural Sociology, 72(2), 289–316.

Hindu. 2012. Kudumbashree programme for woman farmer empowerment | Business Line [online]. The Hindu Businessline . Available from: http://www.thehindubusinessline.com/economy/agri-business/kudumbashree-programme-for-woman-farmer-empowerment/article3573378.ece.

IFOAM. 2007. Organic Agriculture and Gender Equality.

Jain, D. 2014. Gender pay gap decreases, but working conditions worsen - Livemint [online]. Live Mint. Available from: http://www.livemint.com/Opinion/TyTv1W2UFGFKhVEI0e8SsI/Gender-pay-gap-decreases-but-working-conditions-worsen.html [Accessed 14 May 2017].

Kelkar, G. 2007. The Feminization of Agriculture in Asia: Implications for Women's Agency and Productivity [online]. agnet.org. Available from: http://www.agnet.org/library.php?func=view&id=20110725164020 [Accessed 17 Mar 2017].

Khadse, A. 2017. Lets Cooperate: Rural Producers Collectives In India. Delhi: Focus India Publications.

Khadse, A., P.M. Rosset, H. Morales, and B.G. Ferguson. 2017. Taking agroecology to scale: the Zero Budget Natural Farming peasant movement in Karnataka, India. The Journal of Peasant Studies, 1–28.

Koester, D. 2015. Gender and Power [online]. Developmental Leadership Program. Available from: http://publications.dlprog.org/Gender&Power.pdf [Accessed 14 May 2017].

Krishna, S. 2004. Livelihood and gender : equity in community resource management. Sage Publications.

Leisa. 2017. Sustainable and resilient farming-Women Collective's efforts | LEISA INDIA [online]. LeisaIndia. Available from: http://leisaindia.org/articles/sustainable-and-resilient-farming-women-collectives-efforts/ [Accessed 15 May 2017].

Livne, E. 2015. Violence Against Women in India: Origins, Perpetuation and Reform. Carnegie Mellon University.

LTEconomy. 2015. Agroecology in India: Is it the Right Way to Improve Women Conditions and Climate Resilience? - LtEconomy [online]. Long Term Economy. Available from:

http://www.lteconomy.it/en/news-en/notizie-della-settimana/agroecology-in-india-is-it-the-right-way-to-improve-women-conditions-and-climate-resilience [Accessed 15 May 2017].

Lukes, S. 2005. Power : a radical view. Palgrave Macmillan.

Machín Sosa, B., A.M.R. Jaime, D.R.A. Lozano, and P. Rosset. 2013. Agroecological revolution : The Farmer-to-Farmer Movement of the ANAP in Cuba. Havana: ANAP and La Via Campesina.

Machín Sosa, B., A.M. Roque Jaime, D.R. Ávila Lozano, and P. Rosset. 2010. Revolución agroecológica: El Movimiento de Campesino a Campesino de la ANAP. Havana: ANAP and La Via Campesina.

Mahajan, K. 2011. The Gender Gap in Agricultural Wages in India: Spatial Variation, Caste and Non-Farm Employment.

MAKAAM. 2016. Charter of Demands [online]. www.makaam.in. Available from: http://www.makaam.in/charter-of-demands.html [Accessed 6 Feb 2017].

Mcmahon, M. 2004. Gender and Organic Agriculture: A Local and Partisan Position. In: First Annual Conference for Social Research in Organic Agriculture. Guelph, Ontario. Ontario.

Mi Young Park, C. and B. White. 2014. We Are Not All the Same: Taking Gender Seriously in Food Sovereignty Discourse. Food Sovereignty: A Critical Dialogue.

Miller, V. and L. VeneKlasen. 2002. A New Weave of Power, People & Politics: The Action Guide for Advocacy and Citizen Participation | JASS (Just Associates). Stylus publishing.

Mpofu, E. 2016. Opinion: Agroecology for gender equality. Farming Matters.

Mun Ghosh, M. and A. Ghosh. 2014. Analysis of Women Participation in Indian Agriculture. IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS) Ver. IV, 19(5), 1–6.

Nicholls, C.I. 2014. Reflections on the FAO's International Symposium on Agroecology for Food Security and Nutrition : Food First [online]. Food First. Available from: https://foodfirst.org/reflections-on-the-faos-international-symposium-on-agroecology-for-food-security-and-nutrition/ [Accessed 14 May 2017].

Oxfam. 2016. Mobilising Women Farmers to Secure Land Rights in Uttar Pradesh [online]. Oxfam India. Available from: https://www.oxfamindia.org/sites/default/files/OIA-Mobilising-Women-Farmers-to-Secure-Land-Rights-in-Uttar-Pradesh-12032016-EN.pdf [Accessed 14 May 2017].

Pimbert, M. 2015. Agroecology as an Alternative Vision to Conventional Development and Climate-smart Agriculture. Development, 58(2–3), 286–98.

Purnima and S. Mamidipudi. 2015. Women Farmers: Rights and Identity. Ahmedabad.

Quinn-Thibodeau, T. 2015. Agroecology leading the fight against India's Green Revolution - The Ecologist [online]. Ecologist. Available from: http://www.theecologist.org/Interviews/2985620/agroecology_leading_the_fight_against_indias_green_revolution.html [Accessed 15 May 2017].

Rao, N. 2016. Transforming gender relations in agriculture through women's empowerment: benefits, challenges and trade-offs for improving nutrition outcomes | Global Forum on Food Security and Nutrition (FSN Forum) [online]. FAO Global Forum on Food Security and Nutrition. Available from: http://www.fao.org/fsnforum/comment/7215 [Accessed 14 May 2017].

Rosset, P., B.M. Sosa, A.M.R. Jaime, and D.R.Á. Lozano. 2011. The Campesino-to-Campesino agroecology movement of ANAP in Cuba: social process methodology in the construction of sustainable peasant agriculture and food sovereignty. The Journal of peasant studies, 38(1), 161–91.

Rural Women Upliftment Society. 2017. Right to food and Food Security [online]. http://www.rwus.org. Available from: http://www.rwus.org/what-we-do/right-to-food-and-food-security/ [Accessed 15 May 2017].

Saxena, N. 2012. Women, Land and Agriculture in Rural India.

School of Open Learning, D.U. 2017. Human rights, Gender and Environment [online]. https://sol.du.ac.in. Available from: https://sol.du.ac.in/mod/book/view.php?id=1474&chapterid=1386 [Accessed 9 Mar 2017].

Schwendler, S.F. and L.A. Thompson. 2017. An education in gender and agroecology in Brazil's Landless Rural Workers' Movement. Gender and Education, 29(1), 100–14.

Serres, D. 2017. Why Patriarchy Persists (and How We Can Change It) [online]. http://organizingchange.org. Available from: http://organizingchange.org/patriarchy-persists-can-change/ [Accessed 14 Mar 2017].

Shiva, V. 1991. Most farmers in India are women. Delhi: FAO.

Singh, S. 2014. Swami Agnivesh to Left wingers: Who the IB report on NGOs names [online]. Firstpost. Available from: http://www.firstpost.com/india/swami-agnivesh-to-left-wingers-who-the-ib-report-on-ngos-names-1569081.html [Accessed 15 May 2017].

Sircar, A.K. and S. Pal. 2014. What is preventing women from inheriting land? A study of the implementation of the Hindu Succession (amendment) Act 2005 in three states in India. In: World Bank conference on land and poverty. Washington DC: The World Bank.

Sk, C. 2017. Working out access on our own: Community projects, gender and internet |

GenderIT.org [online]. Genderit.org. Available from: http://www.genderit.org/feminist-talk/working-out-access-our-own-community-projects-gender-and-internet [Accessed 15 May 2017].

Sumner, J. and S. Llewelyn. 2011. Organic Solutions? Gender and Organic Farming in the Age of Industrial Agriculture. Capitalism Nature Socialism, 22(1), 100–18.

Varghese, S. 2011. Women at the Center of Climate-friendly Approaches to Agriculture and Water Use.

Velayudhan, M. 2009. Women's Land Rights in South Asia: Struggles and Diverse Contexts. Economic and Political Weekly, 44(44).

World Bank, FAO, and IFAD. 2015. Gender in climate-smart agriculture : module 18 for gender in agriculture sourcebook

फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ

फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ, एशिया (थाईलैंड, फिलीपीन्स एवं भारत) में स्थित एक नीति शोध संगठन है। फोकस भारत एवं विश्व के दक्षिण भाग (यानी विकासशील देशों) में वैश्वीकरण की राजनीतिक अर्थव्यवस्था और इस प्रक्रिया में अंतर्निहित प्रमुख संस्थाओं के बारे में शोध तथा विश्लेषण प्रदान कर सामाजिक आंदोलनों एवं समुदायों की सहायता करता है। फोकस के लक्ष्य दमनकारी आर्थिक एवं राजनीतिक संरचनाओं की समाप्ति, स्वतंत्र संरचनाओं तथा संस्थाओं का निर्माण, विसैन्यीकरण और शांति को बढ़ावा देना है।

रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफतुंग (आर.एल.एस.)

रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफटुंग (आर.एल.एस.) जर्मनी में स्थित एक फाउंडेशन है, जो दक्षिण एशिया की तरह ही विश्व के अन्य भागों में महत्वपूर्ण सामाजिक विश्लेषण और नागरिक शिक्षा के विषयों पर कार्य कर रहा है। यह एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष एवं लोकतांत्रिक सामाजिक व्यवस्था को बढ़ावा देता है। इसका उद्देश्य समाज एवं नीति निर्धारकों के सामने वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करना है। यह शोध संगठनों, स्व–मुक्ति के लिए संघर्ष करने वाले समूहों और सामाजिक कार्यकर्ताओं को उन मॉडल्स के विकास में उनकी पहलों में मदद देता है, जिनमें अत्यधिक सामाजिक एवं आर्थिक न्याय देने की क्षमता है।